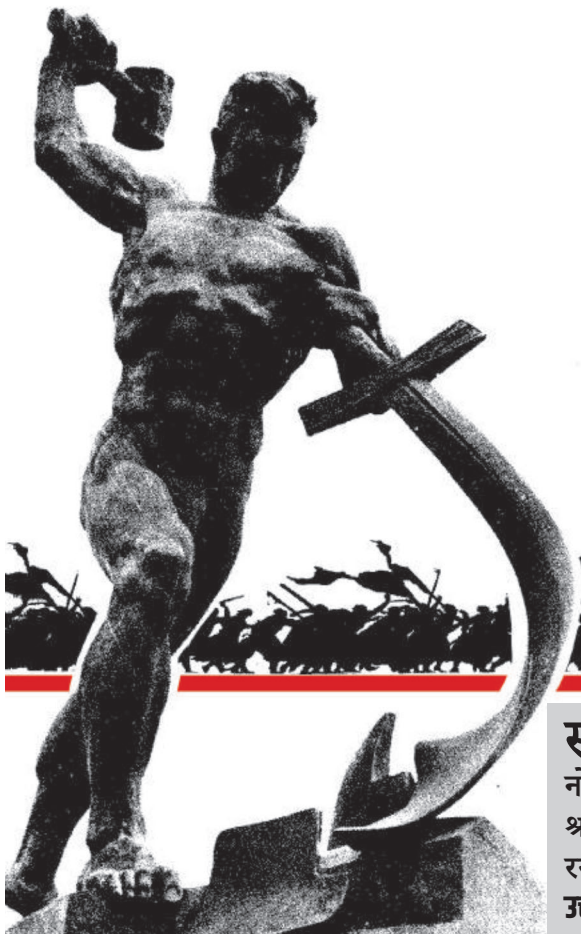




मजदूर बिगुल

सब याद रखा जायेगा!

नोएडा मजदूर आन्दोलन के दौरान गिरफ्तार श्रमिकों और कार्यकर्ताओं को सलाखों के पीछे रखने की योगी सरकार की चालों को उत्तर प्रदेश के मजदूर-मेहनतकश भूलेंगे नहीं!

नेपाल में आया भीषण सैलाब यह आपदा प्राकृतिक नहीं, बल्कि पूँजीवाद-जनित है

क्रान्तिकारी मजदूर शिक्षण माला - 34 मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

8

15

18

एसआईआर मेहनतकश जनता का मताधिकार छीनने के लिए किया गया एक घोटाला है!

एसआईआर को रद्द कराने और ईवीएम को प्रतिबन्धित कराने के जुझारु संघर्ष के लिए

आम जनता को एकजुट होना होगा!

हाल ही में 'इण्डियन एक्सप्रेस' अखबार द्वारा किये गये खुलासे से स्पष्ट तौर पर जाहिर हो गया है कि विशेष सघन पुनरीक्षण (स्पेशल इण्टेंसिव रिविजन - एसआईआर) जनता के विरुद्ध किया गया एक खतरनाक चुनावी घोटाला है। इस घोटाले का मकसद है मजदूरों, आम गरीब अल्पशिक्षित मेहनतकश जनता, मुसलमानों, दलितों, आदिवासियों और औरतों के मताधिकार, यानी वोट देने के अधिकार को छीनना। यानी एसआईआर के जरिये ठीक उन सामाजिक वर्गों और समुदायों के वोट के अधिकार को छीन लेना

मोदी-शाह सरकार का लक्ष्य है जिनमें भाजपा के विरुद्ध वोट देने की सम्भावना अधिक होती है। हाल ही में 'इण्डियन एक्सप्रेस' अखबार की एक पत्रकार द्वारा किये गये भण्डाफोड़ से इस साजिश की कई नयी परतें उजागर हुई हैं।

एसआईआर और केन्द्रीय चुनाव आयोग पर नया खुलासा
'इण्डियन एक्सप्रेस' अखबार द्वारा किये गये खुलासे से यह सत्य उद्घाटित हुआ है कि केन्द्रीय चुनाव आयोग के दो अन्य चुनाव आयुक्तों ने पिछले 10

सम्पादकीय अग्रलेख

माह के दौरान ही मुख्य केन्द्रीय चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार द्वारा लागू किये गये एसआईआर-सम्बन्धी फैसलों पर 14 बार आपत्तियाँ दर्ज करायीं। लेकिन इसके बावजूद अपने राजनीतिक आक्राओं, यानी मोदी-शाह, की शह पर ज्ञानेश कुमार ने धक्कड़शाही कर मनमानेपन से अपने असंवैधानिक और अवैध फैसलों को लागू करवाया। इन आपत्तियों का रिश्ता वोटों के नाम के काटे जाने, नये वोटों के नाम जोड़े जाने और काटे गये नामों को फिर से

जोड़ने की गलत प्रक्रिया और सम्पूर्ण मतदाता सूचियों पर चुनावी पंजीकरण अधिकारियों के नियन्त्रण को सीमित करने और उसे केन्द्रीय यानी ज्ञानेश कुमार के नियन्त्रण में लाने के तानाशाहाना फैसलों से था। जाहिर है, केचुआ आयुक्त ज्ञानेश कुमार भाजपा के पक्ष में जनता के एक अच्छे-खासे हिस्से के मताधिकार को छीनने के लिए केन्द्रीय चुनाव आयोग के अन्य दो चुनाव आयुक्तों की आपत्तियों को नज़रन्दाज़ कर रहा था।

इस खुलासे के बाद केचुआ ने एक आधिकारिक बयान में स्पष्टीकरण देते

हुए कहा कि वह एसआईआर के सवाल पर एकमत है! हमेशा की तरह केचुआ व ज्ञानेश कुमार के बचाव में देश भर में लम्बे समय से हँसी का पात्र बना हुआ भाजपा प्रवक्ता सम्बित पात्रा उतर पड़ा। उसने दावा किया कि केचुआ के भीतर ये "असहमतियाँ" तो यह दिखलाती हैं कि हमारे देश के चुनाव आयोग के भीतर कितना जीवन्त "लोकतन्त्र" है! यह व्यक्ति क्यों जनता के बीच लम्बे समय से हँसी का पात्र बना हुआ है, आप उसके इस बयान से समझ सकते हैं। लेकिन ये बेहूदा जुमलेबाजियाँ, कुर्तक, थेंथरई (पेज 4 पर जारी)

नोएडा मजदूर आन्दोलन के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने आकृति चौधरी पर लगे एनएसए को किया रद्द!

योगी सरकार व यूपी पुलिस के आरोपों को मनगढ़न्त बता डीएम मेधा रूपम पर लगाया ₹ 5 लाख का जुर्माना!

सर्वोच्च न्यायालय ने ज्ञानेश कुमार पुत्री को दी राहत, जुर्माने के आदेश पर लगायी रोक!

सुनवाई की प्रक्रिया गम्भीर सवालों के घेरे में!

• बिगुल संवाददाता

नोएडा मजदूर आन्दोलन मामले में दो कार्यकर्ताओं (सत्यम वर्मा व आकृति चौधरी) पर लगाये गये एनएसए में से एक की सुनवाई करते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय की जस्टिस अतुल श्रीधरन व जस्टिस अचल सचदेव की खण्डपीठ ने 3 सितम्बर को न सिर्फ एनएसए रद्द करने का फैसला सुनाया बल्कि यूपी पुलिस की पूरी कहानी और जाँच को मनगढ़न्त बताया। इसके साथ ही, झूठे आरोपों के तहत एक

छात्रा को एनएसए जैसे आपवादिक कानून में जेल भेजने वाले अधिकारियों पर 5 लाख का जुर्माना भी लगाया, जिसमें केचुआ आयुक्त ज्ञानेश कुमार की पुत्री जिला मैजिस्ट्रेट मेधा रूपम प्रमुख है। हालाँकि, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इस फैसले को नोएडा की डीएम और उत्तरप्रदेश सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी।

23 सितम्बर को सुप्रीम कोर्ट में इस याचिका पर सुनवाई करते हुए जस्टिस

सतीश चन्द्र शर्मा और जस्टिस एन के सिंह की पीठ ने अन्तरिम राहत के तौर पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा डीएम मेधा रूपम के ऊपर जुर्माने के आदेश व गम्भीर आलोचनात्मक टिप्पणियों पर रोक लगा दी और बाक़ी मसले पर सुनवाई के लिए अगली तारीख मुक़र्र कर दी। सर्वोच्च न्यायालय की पीठ ने जुर्माने के फैसले को रद्द करने के पीछे उत्तरप्रदेश सरकार व ज्ञानेश कुमार पुत्री के वकील मुकुल

रोहतगी और तुषार मेहता के तर्क से सहमति जतायी कि एनएसए लगाने का फैसला सिर्फ़ जिलाधिकारी का नहीं होता है, कई स्तरों पर होने वाली जाँच और रिपोर्टों के आधार पर जिलाधिकारी अपनी अनुशंसा देती है जो कि इस पूरी प्रक्रिया कि एक कड़ी मात्र है इसलिए उनपर जुर्माना लगाया जाना न्यायोचित नहीं होगा!

यूँ तो इलाहाबाद उच्च न्यायालय के जस्टिस श्रीधरन व जस्टिस सचदेव ने

अपने आदेश में यह साफ़-साफ़ कहा था कि फ़र्जी तरीक़े से एनएसए लगाये जाने के मामले में जिम्मेदार सभी अधिकारियों यानी थाने के एसएचओ से लेकर डीएम तक से हर्जाने की राशि वसूली जानी चाहिए मगर इस पूरे आदेश को डीएम मेधा रूपम तक सीमित करके एक बचकाने तर्क के आधार पर उच्च न्यायालय के जुर्माने सम्बन्धी फैसले को रद्द कर दिया गया। (पेज 10 पर जारी)

बना बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

मुक्तिबोध के स्मृति दिवस (11 सितम्बर) के मौके पर साहित्य में पक्षधरता, विश्वबोध और मानव-मूल्य

साहित्य में पक्षधरता का प्रश्न हमेशा से रहा है और रहेगा। पक्षधरता का सम्बन्ध मनुष्य के विश्वबोध और सद्-असद्-विवेक बुद्धि अर्थात् अन्तरात्मा के विवेक से है। हिन्दी में आत्मा की बात की जाती है, विभिन्न सन्दर्भों के अनुसार उसके विभिन्न अर्थ भी हैं। हिन्दी में आभ्यन्तर जगत, अन्तरतम, अन्तर, हृदय आदि का प्रयोग भी है। उन सबका सार-रूप अर्थ है-मनुष्य का अन्तर्मन, या कहिए मनो-जगत्, जिसमें बुद्धि, कल्पना, संवेदना, भावना आदि की प्रक्रियाएँ चलती हैं। किन्तु, अन्तरात्मा एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ है-मनुष्य की कानशैन्स, अर्थात् वह भावनापूर्ण सद्सदविवेक बुद्धि जो मनुष्य को बुरे कामों से रोकती है, और अच्छे कामों की ओर प्रवृत्त करती है।...

संक्षेप में, पक्षधरता के प्रश्न को अन्तरात्मा के प्रश्न से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। (हाँ, जिस प्रकार मिथ्या ज्ञान हो सकता है, उसी प्रकार ग़लत ढंग की अन्तरात्मा या अन-अन्तरात्मा भी हो सकती है।) यदि पक्षधरता है, तो अन्तरात्मा का पक्ष होना चाहिए, अर्थात् मानव मूल्यों की चरम उत्कर्ष स्थिति के

रसात्मक बोध का पक्ष होना चाहिए। किन्तु, मनुष्य अपने जीवन में, आत्मरक्षा के लिए, ग़लत ढंग के समझौते कर रखता है। व्यक्ति के प्रति अपनी निष्ठा-स्वार्थ-बुद्धि के कारण-कभी-कभी सर्वोच्च स्थान पा लेती है, न कि न्याय बुद्धि। फिर, इस प्रकार के ग़लत ढंग के समझौतों का घेरा उसकी सहानुभूति-शक्ति, उसकी संवेदनात्मक ज्ञान-शक्ति को धुंधला कर देती है। परिणामतः, उसकी (सत्यस्पर्शी) भावनाएँ, वास्तविक मानव-अस्तित्व पर प्रकाश न डालते हुए, उसकी अपनी व्यक्तिगत मनोवृत्ति, स्थिति के औचित्य के प्रतिपादन करने का एक सैद्धान्तिक प्रयास बन जाती है और उसकी अन्तरात्मा क्षोण बन जाती है।



संक्षेप में, चेतना के स्तर का प्रश्न है। यह नैतिक, बौद्धिक और भावनात्मक स्थितियों के एकीभूत रूप का प्रश्न है। अन्तरात्मा के विकास का प्रश्न है। समाज के पिछड़ेपन में, विभिन्न दिशाओं से प्रवहमान वायु-धाराओं के प्रभावों की उस स्थिति का प्रश्न है, जो व्यक्ति की उसकी अपनी संकुचित निजता की रक्षा करती है।

हिन्दी में इस समय काव्य में अन्तरात्मा अपने पूरे विश्वबोध और समग्रानु-भूति को लेकर हलचल करती हुई-सी, उपस्थित हुई-सी, दिखायी नहीं देती। यह युग डिस्सोसिएशन्स का युग है। मूलतः, सृजन प्रक्रिया में, भाव-कल्पना-बुद्धि का योग होता है। साथ ही वह मानव यथार्थ के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में होता है। यह मानव-यथार्थ एक जीवन तथ्य, एक ऐतिहासिक क्रम के क्षण के रूप में कवि के सम्मुख प्रस्तुत होता है। मनुष्य के सारे व्यक्तित्व की प्रतिक्रिया उसके प्रति होनी चाहिए। और यह प्रश्न मुख्य है कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व की यह प्रतिक्रिया किस दृष्टि से की जाती है, किस पक्ष से की जाती है, किस प्रकार की जाती है।

— गजानन माधव मुक्तिबोध

‘मज़दूर बिगुल’ के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

‘मज़दूर बिगुल’ के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. ‘मज़दूर बिगुल’ की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।
2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।
3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)
4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे ‘बिगुल’ 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितियों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हाट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं।

नम्बर है : 8853476339

“बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।” – लेनिन

‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन माँगने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी ‘मज़दूर बिगुल’ से जुड़ सकते हैं :

www.facebook.com/MazdoorBigul

‘मज़दूर बिगुल’ का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. ‘मज़दूर बिगुल’ व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. ‘मज़दूर बिगुल’ भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और ‘बिगुल’ देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. ‘मज़दूर बिगुल’ स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टियों के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर “कम्युनिस्टों” और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क्रतारों से क्रान्तिकारी भर्तों के काम में सहयोगी बनेगा।
5. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको ‘मज़दूर बिगुल’ का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

QR कोड व UPI

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul

खाता संख्या : 0762002109003787,

IFSC: PUNB0185400

पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ



UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हाट्सएप)

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016, फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

"सीज़फ़ायर समझौते" के बावजूद फ़िलिस्तीनियों पर हमले जारी : फ़िलिस्तीनी ज़मीन पर बढ़ती अवैध इज़रायली सेटलरों की संख्या !

ग़ज़ा में बच्चों के पतंग उड़ाने पर प्रतिबन्ध ज़ायनवादी इज़रायल के गहराते भय का परिचायक है!

भारत में भी मोदी सरकार द्वारा फ़िलिस्तीन समर्थकों को डराने-धमकाने की कायराना कोशिश जारी है!

● प्रियम्बदा

अक्टूबर 2026 में "ट्रम्प नीत सीज़फ़ायर समझौते" के एक साल पूरे हो जायेंगे। अक्टूबर 2023 के बाद से फ़िलिस्तीनियों पर जारी इज़रायली बर्बरता में "सीज़फ़ायर" के बाद भी कोई बदलाव नहीं आया है। हवाई हमलों से लेकर स्थानीय लोगों को बेघर करने, उन्हें बुनियादी सुविधाओं से वंचित करने का काम अब भी जारी है। साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा "युद्धविराम" की घोषणा पहले दिन से ही एक घटिया मज़ाक़ था जिसकी असलियत हर बीतते दिन के साथ दुनिया के सामने आ रही है।

"युद्धविराम" के प्रमुख समझौते में यह शामिल था कि इज़रायली हमलों को बन्द किया जायेगा, ग़ज़ा में मानवीय सेवाओं और वस्तुओं की आपूर्ति को सुनिश्चित किया जायेगा, तक्ररीबन 2000 फ़िलिस्तीनी क़ैदियों को इज़रायली जेलों से रिहा किया जायेगा और हमास द्वारा इज़रायली बन्धकों को लौटाया जायेगा। साथ ही, इज़रायली सेना पीछे हटेगी और "पीली रेखा" से आगे क़ब्जे को नहीं बढ़ायेगी। मगर जब हम ज़मीनी हकीक़त देखते हैं तो वह समझौते के इन उपरोक्त शर्तों के ठीक उलट है।

10 अक्टूबर 2025 से लेकर 24 अगस्त 2026 के बीच इज़रायल ने "सीज़फ़ायर समझौते" का उल्लंघन एक या दो दफ़ा नहीं बल्कि 4,379 दफ़ा किया है! ग़ज़ा के सरकारी मीडिया ऑफ़िस के मुताबिक़ पिछले लगभग 10 महीनों के दौरान आमतौर पर हर दिन ही हवाई हमलों के साथ-साथ गोली चलने, बच्चों को निशाना बनाने, घरों पर रेड डालने इत्यादि की घटनाएँ हुई हैं। 340 दिनों में मात्र 36 दिन ऐसे रहे हैं जब कोई भयावह हमला दर्ज नहीं किया गया, 304 दिनों में हर रोज़ लोगों के घर नेस्तनाबूद किये गये हैं, उनपर गोली और बमों से हमले किये गये हैं, मरने वालों और घायलों की संख्या बढ़ी है। फ़िलिस्तीनी स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा जारी आँकड़ों के हिसाब से 10 अक्टूबर 2025 से लेकर 24 सितम्बर 2026 के बीच 73,928 बेगुनाह फ़िलिस्तीनी नागरिक मारे जा चुके हैं जिसमें 21,500 बच्चे हैं। वहीं 175,030 लोग गम्भीर रूप से घायल हैं।

बुनियादी मानवीय सहायता की बात करें तो उसे भी फिलिस्तीनीयों तक पहुँचने से रोका जा रहा है। ग़ज़ा सरकारी मीडिया ऑफ़िस की रिपोर्ट के अनुसार 10 अक्टूबर 2025 से लेकर

24 अगस्त 2026 के बीच 189,000 ट्रकों में से ग़ज़ा के भीतर मात्र 66,607 ट्रक पहुँचने दिये गये जो कुल ट्रक की संख्या का मात्र 35% है। इज़रायली सैनिकों ने ख़ासतौर पर आवश्यक पौष्टिक तत्वों को ग़ज़ा की सीमा में जाने से रोका है। मसलन मीट, हरी सब्ज़ियाँ या डेयरी उत्पाद फ़िलिस्तीनी जनता तक बिल्कुल ही नहीं पहुँचने दिये जा रहे हैं। खानपान के संकट और बुनियादी सुविधाओं की आपूर्ति पर रोक की वजह से लोग भयंकर संकट का सामना कर रहे हैं। इज़रायली सेटलर औपनिवेशिक ताक़तों द्वारा ग़ज़ा में भूख को भी एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया जा रहा है।

जहाँ एक तरफ़ हमास ने सभी इज़रायली बन्धकों को वापस करने की शर्तें मानते हुए उन्हें रिहा किया तो वहीं दूसरी तरफ़ इज़रायल "सीज़फ़ायर" की इस शर्त से भी धीरे-धीरे मुकर गया। सभी पुराने बन्दियों को न तो इज़रायली जेलों से रिहा किया गया न ही उनपर किये जा रहे ज़ुल्म में कोई कमी की गयी। बीते एक सालों में तक्ररीबन 200 से अधिक फ़िलिस्तीनी नागरिकों को नये सिरे से बन्धक बनाया जा चुका है। ऑक्युपाइड वेस्ट बैंक और ईस्ट यरूशलम में पिछले 24 सालों के दौरान फ़िलिस्तीनियों की क़ब्ज़ा की गयी ज़मीन पर अवैध इज़रायली बस्तियों की संख्या दोगुनी से अधिक हो गयी है और बीते तीन सालों में इनकी संख्या में कहीं अधिक बढ़ोतरी हुई है। नेतन्याहू द्वारा खुलेआम इस बात का ऐलान किया गया है कि इज़रायली सैनिक पीली रेखा से आगे बढ़ें और कब्ज़ाक्षेत्र को विस्तारित करें। "सीज़फ़ायर" और "शान्ति समझौते" जैसी घोषणाएं एक बार फिर साम्राज्यवादी साज़िश साबित हुई है। ज़ायनवादी उपनिवेशवादी सेटलर्स और साम्राज्यवादी अमेरिका दुनियाभर में फ़िलिस्तीनी-मुक्ति के समर्थन में बढ़ते जनान्दोलन से भयाक्रांत थे और इससे निजात पाने के लिए ही उन्होंने "सीज़फ़ायर" की नौटंकी की। यह सच्चाई दिन-ब-दिन हमारे सामने खुलती जा रही है। इज़रायली नेताओं के बयान को ही देख लें तो यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि "सीज़फ़ायर" का अर्थ उनके लिए कहीं से भी शान्ति या नरसंहार को रोकना नहीं था बल्कि बिना किसी रुकावट के हमलों को जारी रखना था। इज़रायल के राष्ट्रीय सुरक्षा मंत्री बेन-ग्विर का हालिया बयान न सिर्फ़ सेटलर्स की मंशा को नंगे तौर पर उजागर करता है बल्कि ज़ायनवादियों

की क्रूरता और अमानवीयता का भी चरम उदाहरण है। बेन-ग्विर ने कहा कि "हम ग़ज़ा में योजनाबद्ध तरीक़े से हर रात 30 से 40 फ़्रीसदी फिलिस्तीनियों का क़त्ल कर रहे हैं। सिर्फ़ उन्हें ही नहीं मारा जा रहा जिनसे हम तात्कालिक तौर पर कोई ख़तरा महसूस कर रहे हैं बल्कि उन सभी को, जो वहाँ मौजूद हैं, उन्हें जीने का कोई हक़ नहीं है, वो इन्सान नहीं हैं।" इस तरह का यह पहला बयान नहीं है जो इज़रायली नेताओं ने दिया है। इससे पहले भी फ़िलिस्तीन में क़त्लेआम और हिंसा को अंजाम देने के लिए भड़काऊ और धिनौने भाषण दिये जाते रहे हैं। यह हालिया बयान इस बात की स्पष्ट अभिव्यक्ति है कि "20 प्वाइण्ट सीज़फ़ायर प्लान" एक और साम्राज्यवादी फ़्रेब से अधिक कुछ नहीं था। यह अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर फिलिस्तीनी-मुक्ति के लिये जारी जन आन्दोलन को रोकने और लोगों के गुस्से को शान्त करने का एक ज़रिया था ताकि साम्राज्यवादी क़ब्जे को विस्तार देने का काम बेरोकटोक किया जा सके। आने वाले 7 अक्टूबर को फिलिस्तीनियों पर लगातार जारी इज़रायली नरसंहार के 3 वर्ष हो जायेंगे। इन तीन सालों में फ़िलिस्तीनी अवाम ने अपनी बहादुरी और साहस का परिचय पूरी दुनिया को दिया है। साम्राज्यवादी और ज़ायनवादी हत्यारों ने मिलकर भले ही फ़िलिस्तीन को मलबे के ढेर में तब्दील कर दिया हो मगर वे लोगों की उम्मीद, उनके सपनों को तोड़ नहीं पाये हैं। यही कारण है कि आज भी इज़रायली हत्यारी ताक़तें सभी उन्नत हथियारों से लैस होने के बावजूद निहत्थे फ़िलिस्तीनी नागरिक और बच्चों तक से भयभीत रहती है। इसका ताज़ा उदाहरण ज़ायनवादियों द्वारा पतंग उड़ाने पर लगाया गया प्रतिबन्ध है। इज़रायल के "रक्षा" मंत्री यिसराएल काटज़ ने कहा कि "पतंग, ड्रोन से अलग नहीं है और हम पतंग उड़ाने को युद्ध की कार्रवाई मानेंगे!" इज़रायली रक्षा मंत्री का यह बयान उन्नत हथियारों और तकनीकों से लैस एक औपनिवेशिक राज्यसत्ता के डर और कायरता को बयां करता है।

पतंग उड़ाने के कारण ग़ज़ा में पहले ही 4 साल की एक बच्ची और दो अन्य लोगों को ज़ायनवादी हत्यारों ने मार डाला। ये उन हज़ारों बच्चों में से तीन ऐसे बच्चे हैं जिनको मारने के लिए इज़रायली सेना ने सबसे आधुनिक और सटीक निशाना लगाने वाले हथियार का इस्तेमाल किया था। 21वीं सदी के सबसे बर्बर नरसंहार को

अंजाम देने वाले इज़रायली हत्यारे पतंग उड़ाने वाले छोटे बच्चों को युद्ध-अपराधी के तौर पर पेश करना चाहते हैं। स्कूलों और कॉलेजों को मलबे में तब्दील करने वाले फ़िलिस्तीनी बच्चों से पतंग जैसी मामूली से मामूली चीज़ भी छीन लेना चाहते हैं! उनका कहना है कि गुब्बारे और पतंग सीमा के पार अवैध ढंग से रह रहे इज़रायली सेटलर्स के लिए "सुरक्षा का ख़तरा" पैदा कर सकते हैं! इसलिए अपनी सुरक्षा को सुनिश्चित करते हुए उन्हें बच्चों के खेल, खिलौने तक को प्रतिबन्धित करना पड़ रहा है। ज़ायनवादी उपनिवेशवादी हत्यारे चाहे कितने ही प्रतिबन्ध लगा लें, कितनी ही दरिंदगी और निर्ममता को अंजाम दे दें लेकिन उनके भय की खाई कम होने की जगह और गहरी होती जा रही है।

ठीक ऐसी ही स्थिति भारत में सत्तासीन फ़ासीवादी मोदी सरकार की है। जहाँ एक तरफ़ भारत सरकार आधिकारिक तौर पर फ़िलिस्तीन की मुक्ति का समर्थन करती है, यूएन में इज़रायली हमलों के खिलाफ़ वोट करती है, वहीं दूसरी तरफ़ इनकी असलियत तब सामने आती है जब यह अपने ही देश में फ़िलिस्तीन के समर्थन में बोलने वाले आम छात्रों व नागरिकों पर पुलिसिया बर्बरता करती है, उनके ऊपर झूठे मुक़दमे और फ़र्जी एफ़आईआर करती है। एक ऐसी ही हालिया घटना मुम्बई में सामने आयी। 15 सितम्बर को फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन (IPSP) और बीडीएस इन इण्डिया (bdsinindia) की तरफ़ से फ़िलिस्तीनी बच्चों के समर्थन में एक देशव्यापी पतंगबाज़ी का कार्यक्रम रखा गया था। इस कार्यक्रम के महज तीन दिन बाद 18 सितम्बर को मुम्बई में आईपीएसपी के कुछ कार्यकर्ताओं को पुलिस पूरे दिन पूछताछ के सिलसिले में हिरासत में रखती है। इसके साथ ही एक महिला कार्यकर्ता के घर पहुँचकर बिना किसी

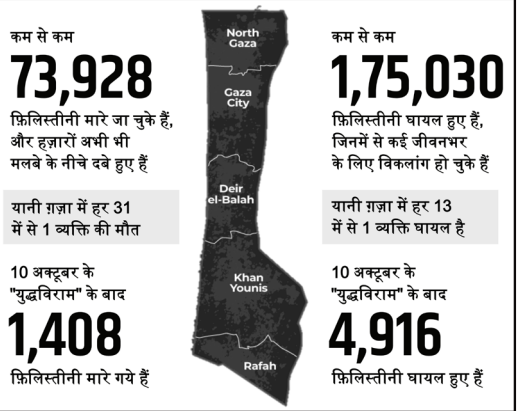
सर्च वारण्ट के 9 घण्टे तक उसके घर की मुम्बई पुलिस द्वारा तलाशी ली जाती है, उसे डराया और धमकाया जाता है। इससे पहले भी मोदी सरकार ने फ़िलिस्तीन के समर्थन में आवाज़ उठाने वाले लोगों को चुप कराया है। अ ल ग - अ ल ग

कॉलेजों-विश्वविद्यालयों में फ़िलिस्तीन के समर्थन में होने वाले कार्यक्रमों को रद्द करवाना हो या फिर छात्रों, आम नागरिकों पर झूठे मुक़दमे लगाना हो, यह मोदी राज में आम ज़मीनी परिघटना बनती जा रही है।

ऐसे में सवाल यह उठता है कि आखिर भारत में फ़िलिस्तीन के समर्थन में बोलना अपराध कब से हो गया? अगर यह अपराध है तो सबसे पहले क्या मोदी सरकार खुद अपराधी साबित नहीं होगी? या फिर फ़िलिस्तीन के समर्थन में मोदी सरकार सिर्फ़ दिखावे के लिए ज़बानी जमाख़र्च कर रही है जबकि उसकी असल यारी इज़रायली ज़ायनवादियों के साथ है? हालात तो यही बयां करते हैं कि मोदी सरकार के सत्तासीन होने के बाद से भारत की मित्रता इज़रायली सेटलर कोलोनियल स्टेट के साथ कहीं अधिक प्रगाढ़ हुई है। जब दुनिया के अधिकांश देश इज़रायली नरसंहार को रोकने के लिए क़दम उठा रहे हैं तब ऐसे वक़्त में मोदी सरकार एक हत्यारे राज्य के साथ अपनी गलबहियाँ कर रही है चाहे वह हथियारों के सौदों के ज़रिये हो या फिर अन्य राजनीतिक और कूटनीतिक समझौतों का बढ़ना हो। यह साफ़ दिखलाता है कि भारत के फ़ासीवादीयों की नैसर्गिक एकता ज़ायनवादी इज़रायल के साथ है और इसलिए ही वे भारत में फ़िलिस्तीन समर्थकों के खिलाफ़ हर क्रिस्म की ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाई कर रहे हैं ताकि उन्हें डराया और चुप कराया जा सके। मगर इज़रायली सेटलर्स की तरह ही यह फ़ासीवादी मोदी सरकार की एक कायराना हरक़त है और यह दरअसल सत्ताधारियों के भय को ही दिखलाता है। फ़िलिस्तीन का मुक्ति के लिए जारी संघर्ष दमन के तमाम तरीक़ों से रोका नहीं जा सकता है और जल्द ही यह साम्राज्यवादी शक्तियों के विनाश का कारण भी बनेगा।

ग़ज़ा में जारी इज़रायली नरसंहार

नवीनता आँकड़े | 7 अक्टूबर 2023 - 24 सितम्बर 2026



एसआईआर को रद्द कराने और ईवीएम को प्रतिबन्धित कराने के जुझारू संघर्ष के लिए आम जनता को एकजुट होना होगा!

(पेज 1 से आगे)

और गलदोई अब काम नहीं आ रही हैं क्योंकि जनता के बीच सच को छिपा पाना अब मुश्किल हो गया है।

बहरहाल, 'इण्डियन एक्सप्रेस' के इस खुलासे से कोई नयी बात ज़ाहिर नहीं हुई है, हालाँकि यह खुलासा करने वाली पत्रकार ने क्राबिले-तारीफ़ काम किया है। इस खुलासे से वही बात एक बार फिर से पुष्ट हुई है जिसका अन्देशा देश भर में तमाम चुनाव विश्लेषक, भूतपूर्व चुनाव आयुक्त, सर्वोच्च न्यायालय के तमाम वकील, जनवादी-नागरिक अधिकार संगठन व कार्यकर्ता और क्रान्तिकारी संगठन लम्बे समय से अभिव्यक्त कर रहे थे : **भाजपा वोटचोरी करके जनादेशों की संधमारी करती रही है और इसी तरह से केन्द्र में और विभिन्न राज्यों में सरकारें बनाती रही है। इसके लिए वह ईवीएम घोटाला व मतगणना घोटाला तो करती ही रही है, साथ में अब वह एसआईआर की इस नयी खतरनाक साजिश के ज़रिये मेहनतकश जनता के एक अच्छे-खासे हिस्से का मताधिकार ही छीन रही है।** ऐसे में, हम मज़दूरों, कर्मचारियों, ग़रीब किसानों, व आम मेहनतकश लोगों को अच्छी तरह से समझना चाहिए कि यह एसआईआर है क्या और क्यों सड़क पर उतरकर इसके विरुद्ध एक जुझारू जनान्दोलन खड़ा करना हमारे अस्तित्व का प्रश्न है, क्योंकि यह हमारे सबसे बुनियादी राजनीतिक जनवादी अधिकार से जुड़ा हुआ है।

एसआईआर क्या है और यह कैसे जनता के वोट देने का अधिकार छीनता है?

एसआईआर यानी वोटर सूची का विशेष सघन पुनरीक्षण वास्तव में एक ग़ैर-क्रान्ती और अवैधानिक क्रम है जिसका मक़सद आम मेहनतकश जनता के एक बड़े हिस्से के वोट देने के अधिकार को छीनना है। क्यों? वजह यह कि हमारे देश में आज़ादी के बाद से ही नियमित प्रक्रिया में मतदाता सूची का संशोधन स्थापित प्रक्रियाओं से होता रहा है, नये वोटरों के नाम जुड़ते रहे हैं, मृत हो गये या देश से बाहर चले गये वोटरों के नाम कटते रहे हैं, अपने निवास-स्थान से कहीं और चले जाने पर मतदाता की जानकारी में बदलाव भी होते रहे हैं और यह मौजूद वोटर सूची में संशोधन के ज़रिये होता रहा है; इसके लिए किसी ऐसे एसआईआर की आवश्यकता कभी नहीं हुई जो पुरानी वोटर सूची को कचरापेटी के हवाले कर नयी वोटर सूची बनाये और "योग्य वोटर" होने को प्रमाणित करने की ज़िम्मेदारी हर भारतीय व्यक्ति पर डाल दे और उसके लिए सभी भारतीय लोगों से ऐसे

दस्तावेज़ माँगे जो उनकी एक अच्छी-खासी आबादी के पास है ही नहीं!

पहले यह प्रक्रिया स्वयं सरकार की पहलकदमी पर होती थी। पहले चुनाव आयोग का नारा था : 'कोई वोटर न छूटे'। लेकिन बहुत कम लोगों ने ग़ौर किया होगा कि अब उसका नारा हो गया है : 'कोई योग्य वोटर न छूटे'। **"योग्य वोटर" कौन होगा? यह मोदी-शाह की फ़ासीवादी सरकार तय करेगी!** यहाँ एक बहुत बड़ा बदलाव किया गया है। पहले इस बात की ज़िम्मेदारी राज्यसत्ता पर होती थी कि वह यह पक्का करे कि हर नये वोटर का नाम मतदाता सूची में जुड़े। इसे 'राजकीय पहलकदमी पर होने वाला

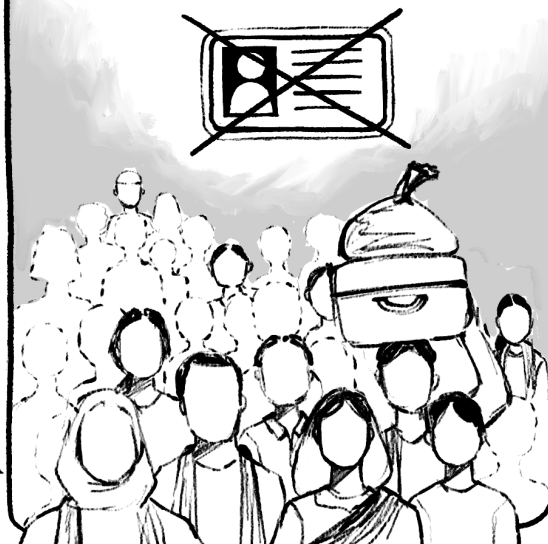
मतदाता पंजीकरण' कहा जाता है। दुनिया के हर देश में जहाँ पूँजीवादी जनवाद किसी न किसी हद तक काम करता है, वहाँ यही होता है। इसके बरक्स कुछ देशों में एक दूसरा मॉडल लागू किया जाता है जिसे कहा जाता है 'व्यक्तिगत पहलकदमी पर होने वाला मतदाता पंजीकरण'। यह आम तौर पर सर्वसत्तावादी तानाशाहियों द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला तरीका है, जिसका मक़सद ही यह होता है कि बड़ी संख्या में मतदाताओं का नाम काटा जाये और उनके मताधिकार को छीन लिया जाये। इसके कारणों को हम कुछ आगे समझेंगे।

पहले मॉडल में, जिसमें सभी को मताधिकार देने की ज़िम्मेदारी सरकार की होती है, बीएलओ (बूथ लेवल ऑफ़िसर, जो आम तौर पर स्थानीय स्कूल के शिक्षक, ऑगनवाड़ीकर्मी आदि होते हैं) का यह काम होता था कि वह अपने इलाक़े में घर-घर जाये और स्वयं नये वोटरों का पंजीकरण करे, मृत वोटरों के नाम को काटे, पता बदल जाने वाले वोटरों की सूचना में बदलाव करे और यह सुनिश्चित करे की कोई वोटर इसमें छूटे नहीं। यह काम पहले से मौजूद मतदाता सूची में संशोधन के ज़रिये होता था।

लेकिन एसआईआर के इस दूसरे मॉडल में, जिसमें हर भारतीय को साबित करना होगा कि वह नागरिक है और इसलिए "योग्य वोटर" है, पुरानी मतदाता सूची को ही रद्द कर दिया गया है और नये सिरे से भाजपा की फ़ासीवादी सरकार मतदाता सूची बना रही है! इसमें वोटर के रूप में पंजीकरण कराने की ज़िम्मेदारी स्वयं वोटर पर होती है और उसे सरकार के सामने साबित करना पड़ता है वह एक वैध

वोटर के रूप में पंजीकृत होने का अधिकार रखता है! यानी अब आपकी ज़िम्मेदारी है कि आप अपनी योग्यता साबित करें। इसके लिए आपको एक फ़ॉर्म दिया जायेगा, जिसे भरकर एक निश्चित तिथि तक वापस करें। अगर आप किसी भी वजह से ऐसा नहीं कर पाते हैं तो आपका नाम मसविदा मतदाता सूची से भी काट दिया जायेगा। पहले यह सरकारी कर्मचारी (बीएलओ) की ज़िम्मेदारी होती थी कि वह सुनिश्चित करे कि आपका नाम वोटर लिस्ट में है, लेकिन अब आपको अपनी योग्यता साबित कर सुनिश्चित करना होगा कि आपका नाम वोटर लिस्ट में है!

इससे पहले कि जनता सरकार चुने अब सरकार अपनी जनता खुद चुनेगी



यह हमारे देश में पहली बार हो रहा है, जिसका मक़सद ही कम शिक्षित आम मेहनतकश ग़रीब आबादी, प्रवासियों, स्त्रियों, दलितों और विशेष तौर पर मुसलमानों का नाम मतदाता सूची से काटना है। हमारे देश के अधिकांश चुनावों में जीत-हार का फ़ैसला 1.5-2 प्रतिशत वोट अन्तर से होता है। ऐसे में, अगर 25 से 40 प्रतिशत तक आम मेहनतकश जनता, मुसलमानों, दलितों, आदिवासियों, स्त्रियों व प्रवासियों का नाम मतदाता सूची से कट जाता है (जिनका बहुलांश सामान्यतः भाजपा को वोट नहीं देता) तो चुनावों में भाजपा की जीत की गुंजाइश हमेशा बेहद ज़्यादा होगी। यही एसआईआर का असली लक्ष्य है और इसीलिए मोदी-शाह ने अपने एक चाटुकार ज्ञानेश कुमार को केचुआ का मुख्य चुनाव आयुक्त बनाया है। ठीक इसीलिए मुख्य केन्द्रीय चुनाव आयुक्त को नियुक्त करने के नियम ही मोदी-शाह सरकार ने बदल दिये ताकि हमेशा अपने किसी गुर्गे को चुनाव आयोग का मुख्य चुनाव आयुक्त बना सकें, इसीलिए 2023 में 140 से ज़्यादा

विपक्षी सांसदों को सदन से निलम्बित कर एक ऐसा क़ानून लाया गया है जिसके तहत केन्द्रीय चुनाव आयुक्त पर इन आपराधिक षड्यन्त्रों के लिए कभी कोई आपराधिक मुक़दमा ही न किया जा सके। आगे बढ़ते हैं।

आधुनिक दुनिया के इतिहास में मतदाता पंजीकरण के इन दोनों ही मॉडलों के नतीजे डेढ़ सौ साल में सामने आ चुके हैं। जहाँ पर राज्य की पहलकदमी और ज़िम्मेदारी पर सभी मतदाताओं का पंजीकरण करने का मॉडल लागू किया जाता रहा है, यानी 99 प्रतिशत देश, वहाँ पर 95 से 100 प्रतिशत लोगों का नाम मतदाता सूची में दर्ज होता रहा है। वहीं जहाँ वोटर बनने के लिए अपनी योग्यता सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी आम जनता पर डाल दी जाती है और इस योग्यता को सिद्ध करने के लिए उससे बेतुकी माँगें की जाती हैं, वहाँ पर अधिकतम 75 प्रतिशत लोग ही मतदाता सूची में अपना नाम दर्ज करवा पाते हैं, क्योंकि ग़रीब, प्रवासी, कम शिक्षित लोग, स्त्रियाँ, दमित समुदायों के लोग अक्सर इन बेतुकी माँगों को पूरा कर ही नहीं पाते। एक उदाहरण से इसे समझते हैं, क्योंकि इतिहास में यह कुकर्म अलग-अलग प्रकार की सर्वसत्तावादी हुकूमतों ने पहले भी किया है।

जब अमेरिका में उन्नीसवीं सदी में काले लोगों की गुलामी का उन्मूलन हो गया तो उसके दक्षिणी प्रान्तों में श्वेत पूँजीवादी शासक वर्ग को भारी संख्या में मौजूद काले लोगों के वोटिंग अधिकार के नतीजों का भय सताने लगा। तब अमेरिका के इन दक्षिणी प्रान्तों में वहाँ के श्वेत पूँजीवादी शासक वर्ग ने ठीक एसआईआर जैसा प्रावधान लागू किया और उसमें अपने आपको योग्य वोटर सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी जनता पर डालते हुए उससे ऐसे दस्तावेज़ माँगे जो अधिकांश काले मेहनतकश लोगों के पास थे ही नहीं! साथ ही, ये दस्तावेज़ ठीक-ठाक श्वेत मेहनतकश आबादी के पास भी नहीं थे। नतीजा यह हुआ कि काले लोगों की बहुसंख्या तो मतदाता सूची में अपना नाम दर्ज करवाने में असफल रही ही, गोरी मेहनतकश आबादी का भी एक हिस्सा अपने आपको "योग्य वोटर" सिद्ध नहीं कर पाया। दक्षिण अफ़्रीका में भी पूँजीवादी शासक वर्ग ने एक समय यही किया था।

भाजपा की फ़ासीवादी मोदी-शाह सरकार आज अमेरिकी तानाशाहाना

नस्लवादी शासक वर्ग और दक्षिण अफ़्रीका के तानाशाहाना नस्लवादी शासक वर्ग की इस चाल का इस्तेमाल कर रही है, ताकि मतदाता सूची इस तरह बनायी जाये कि चुनावों में भाजपा की हार ही लगभग असम्भव हो जाये। **क्योंकि जैसे ही आप "योग्य वोटर" होने की ज़िम्मेदारी जनता पर डाल देते हैं, वैसे ही 20 से 30 प्रतिशत आबादी मतदाता सूची से बाहर हो जाती है। क्यों? एक बहुत बड़ी ग़रीब मेहनतकश आबादी के पास वे दस्तावेज़ ही नहीं होते जो माँगे जा रहे हैं। दूसरा, एक बहुत बड़ी आबादी के पास शिक्षा का वह स्तर ही नहीं है कि वह फ़ॉर्म भरने से लेकर, नोटिसों का जवाब देने, तमाम प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने का काम कर सके। तीसरा, एक बहुत बड़ी मेहनतकश आबादी के पास वह समय और संसाधन नहीं होते कि वह लाइन में खड़ी हो, शहर जाकर फोटो खिंचवाये, नये प्रमाणपत्र बनवाये क्योंकि वह दिनों-रात अपनी रोज़ी-रोटी के लिए कम्तरतोड़ मेहनत करने के लिए बाध्य कर दी गयी है। नतीजा यह होगा कि प्रवासी मज़दूर, खेतिहर मज़दूर, औरतें, ग़रीब दलित, आदिवासी और विशेष तौर पर मुसलमान मतदाता सूची से बाहर हो जायेंगे और उनका मताधिकार छीन लिया जायेगा।**

वोटर के रूप में अपनी योग्यता साबित करने के लिए अब एसआईआर के तहत केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) आपसे उन दस्तावेज़ों या प्रमाणपत्रों की माँग कर रहा है, जो देश की आम मेहनतकश जनता के एक अच्छे-खासे हिस्से के पास हैं ही नहीं। इन ग्यारह दस्तावेज़ों में न तो आधार कार्ड शामिल है, न राशन कार्ड शामिल है, न पैन कार्ड शामिल है, न ड्राइविंग लाइसेंस शामिल है! यानी ठीक वे दस्तावेज़ जिनकी पहुँच व्यापक आबादी में गहराई तक है, मसलन, आधार कार्ड जिसकी पहुँच लगभग 100 प्रतिशत है, या राशन कार्ड जिसकी पहुँच आम मेहनतकश आबादी में 60 प्रतिशत से ऊपर है, उन्हें इस सूची से बाहर कर दिया गया है! स्वयं केन्द्रीय चुनाव आयोग द्वारा जारी एपिक कार्ड को भी किसी के "योग्य मतदाता" होने का प्रमाण होने की श्रेणी से बाहर कर दिया गया है! यानी केन्द्रीय चुनाव आयोग अपने द्वारा जारी किये गये पहचानपत्र को भी नहीं मान रहा!

तर्क यह दिया गया है कि ये फ़र्ज़ी तौर पर बनवाये जा सकते हैं और इनसे नागरिकता सिद्ध नहीं होती! लेकिन जो दस्तावेज़ शामिल किये गये हैं, मसलन,

(पेज 5 पर जारी)

एसआईआर को रद्द कराने और ईवीएम को प्रतिबन्धित कराने के जुझारू संघर्ष के लिए आम जनता को एकजुट होना होगा!

(पेज 4 से आगे)

जाति प्रमाणपत्र, जन्म प्रमाणपत्र, 1987 से पहले जारी आधिकारिक प्रमाणपत्र या पहचानपत्र, दसवीं उत्तीर्ण करने का प्रमाणपत्र, ज़मीन या मकान का सरकारी पट्टा, वे भी या तो ऐसे दस्तावेज़ हैं जो 80 प्रतिशत आबादी के पास हैं ही नहीं, या उन्हें भी फ़र्जी तौर पर बनवाया जा सकता है, या उनसे भी नागरिकता सिद्ध नहीं होती! साफ़ है कि मतदाता बनने की योग्यता सिद्ध करने के लिए माँगे जाने वाले दस्तावेज़ों में से ठीक उन दस्तावेज़ों को हटा दिया गया है जो भारी मेहनतकश आम जनता के पास होते हैं और ठीक उन दस्तावेज़ों को शामिल किया गया है जो मज़दूरों, ग़रीब किसानों, प्रवासी कामगारों, औरतों, ग़रीब मुसलमानों, दलितों व आदिवासियों के पास नहीं होते। नतीजा यह हुआ है कि जहाँ-जहाँ एसआईआर हुआ है वहाँ पर ठीक इन्हीं सामाजिक वर्गों और समुदायों से भारी संख्या में वोटों के नाम मतदाता सूची से काट दिये गये हैं।

दूसरी बात यह है कि पहली बार केन्द्रीय चुनाव आयोग मतदाता सूची में शामिल होने के लिए देश के लोगों से नागरिकता का प्रमाण-पत्र माँग रहा है, जबकि यह केन्द्रीय चुनाव आयोग के अधिकार-क्षेत्र में ही नहीं है कि वह लोगों से नागरिकता का सबूत माँगे या नागरिकता निर्धारित करे। वैसे मोदी सरकार अभी तक नहीं बता पायी है कि कौन-से दस्तावेज़ से नागरिकता सिद्ध होती है! बहरहाल, प्रसिद्ध लाल बाबू हुसैन केस (1995) में देश के सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही इस बात की सख्त मनाही की थी कि चुनाव आयोग नागरिकता के सबूत या दस्तावेज़ नहीं माँग सकता है। यह अधिकार केवल गृह मन्त्रालय का होता है कि वह नागरिकता को निर्धारित करे। केन्द्रीय चुनाव आयोग ने कहने के लिए बिहार के एसआईआर में छूट दी थी कि यदि आप ही नहीं यदि आपके माता-पिता या कोई सम्बन्धी 2003 की सूची में थे, तो आपको कोई दस्तावेज़ पेश करने की आवश्यकता नहीं है। बिहार में राजनीतिक स्थिति अपने पक्ष में बनते देख भाजपा ने इस बात की इजाज़त भी चुनाव आयोग को एसआईआर के दौरान दे दी थी कि अगर किसी का रिश्तेदार या पिता, चाचा, मामा आदि भी 2003 की सूची में थे, तो उसे भी कोई दस्तावेज़ पेश करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन याद रहे, यह एसआईआर के जारी केन्द्रीय निर्देश के नियम नहीं हैं और जिस भी राज्य में चाहे केन्द्रीय चुनाव आयोग एसआईआर में ये छूटें देने से इंकार कर सकता है और करता है, जैसा कि पश्चिम बंगाल और असम में

देखने में आया। एसआईआर के इन अन्यायपूर्ण प्रावधानों में केचुआ ने कोई बदलाव नहीं किया और जब चाहे उसे लागू कर सकता है, जैसा कि बिहार के बाद हुए एसआईआर में साबित भी हो गया है।

तीसरी बात यह है कि योग्यता यानी नागरिकता को सिद्ध करने वाले दस्तावेज़ों में यह कहकर आधार कार्ड को बाहर कर दिया गया कि वह नागरिकता का प्रमाण-पत्र नहीं है, लेकिन जिन दस्तावेज़ों को शामिल किया गया है क्या वे नागरिकता के प्रमाण-पत्र हैं? मसलन, क्या दसवीं का प्रमाणपत्र नागरिकता का सबूत है? नेपाल से ही एक भारी आबादी भारत में आती है और दसवीं की परीक्षा यहीं से उत्तीर्ण करती है। क्या निवास प्रमाण-पत्र नागरिकता का सबूत है? भारत में कुत्तों के नाम पर, ट्रैक्टर कम्पनी के नाम पर, डोनाल्ड ट्रम्प के नाम पर, सनी लियोनी के नाम पर निवास प्रमाण-पत्र जारी किये गये हैं! पासपोर्ट के अलावा स्वीकृत दस्तावेज़ों की सूची में कोई भी नागरिकता का प्रमाण-पत्र नहीं है और अब तो मोदी-शाह सरकार यह दावा तक कर रही है कि पासपोर्ट भी नागरिकता का निर्णायक प्रमाण-पत्र नहीं है! साफ़ है कि एसआईआर के तहत माँगे जा रहे स्वीकृत दस्तावेज़ों के आधार पर भी नागरिकता सिद्ध नहीं होती।

तो फिर नागरिकता और मतदाता की “योग्यता” सिद्ध कैसे होती है? शायद भाजपा और आरएसएस के सदस्यता पहचान-पत्र से! असल खेल क्या है? जो दस्तावेज़ मेहनतकश जनता के भारी बहुलांश के पास है, वह केचुआ नहीं मानेगा और ठीक वे ही दस्तावेज़ माँगेगा जो मेहनतकश जनता के बहुलांश के पास आम तौर पर नहीं होते! मिसाल के तौर पर, एक व्यापक सर्वेक्षण में पता चला कि बिहार में एसआईआर के दौरान 43 प्रतिशत जनता के पास वे दस्तावेज़ थे ही नहीं जो केन्द्रीय चुनाव आयोग द्वारा माँगे जा रहे हैं! जाहिर है, इस सारे घपले के पीछे असली मक़सद है आम मेहनतकश जनता के एक विचारणीय हिस्से के मताधिकार को छीनना।

यही कारण है कि सितम्बर 2026 तक हुए एसआईआर में अब तक देश के 13.98 करोड़ मतदाताओं के नाम मतदाता सूची के काटकर उन्हें मताधिकार से वंचित किया जा चुका है! दिल्ली जैसे राज्य में मतदाता सूची से काटे गये नामों की संख्या 48 लाख के करीब है जबकि अन्य 33 लाख वोटों को योग्यता सिद्ध करने के नोटिस जारी किये गये हैं! यानी, करीब आधे लोगों का नाम

या तो वोटर लिस्ट से काट दिया गया है या उन पर कटने की तलवार लटक रही है! इसी प्रकार, पश्चिम बंगाल में जारी पहली सूची में करीब 91 लाख मतदाताओं के नाम वोटर लिस्ट से काट दिये गये जो संख्या अन्तिम सूची आते-आते करीब 27 लाख तक पहुँची और इनके कारण ही भाजपा पश्चिम बंगाल में चुनाव जीत सकी, वरना उसकी सीटों में वृद्धि अवश्य हो सकती थी, लेकिन बहुमत तक उसका पहुँच पाना सम्भव नहीं था। बिहार में 47 लाख मतदाताओं के नाम वोटर लिस्ट से काटे गये! बिहार विधानसभा में भाजपा की चुनावी जीत में भी इस घपले का बहुत बड़ा योगदान था। उत्तर प्रदेश में लगभग 2.89 करोड़ मतदाताओं के नाम काटे जा चुके हैं! महाराष्ट्र में यह संख्या 1.58 करोड़ है! तमिलनाडु में करीब 98 लाख नाम काटे गये हैं!

भाजपा की खिदमत – ‘केचुआ’ दण्डवत



“घुसपैठिया-घुसपैठिया” चिल्लाने की भाजपा की फ़ासीवादी राजनीति की असलियत

क्या वे 14 करोड़ लोग जिनके नाम मतदाता सूची से काटे गये हैं, वे सभी बंगलादेशी घुसपैठिये हैं? क्या वे सभी भारत के नागरिक नहीं हैं? इससे बड़ी बकवास और कोई नहीं हो सकती है। स्पष्ट है कि बंगलादेशी घुसपैठियों की पहचान का इससे कोई रिश्ता ही नहीं है। ऊपर से घुसपैठियों की पहचान करना केन्द्रीय चुनाव आयोग का काम ही नहीं है, न ही नागरिकता को निर्धारित करना केन्द्रीय चुनाव आयोग का काम है। ये दोनों ही गृह मन्त्रालय का काम है। तो क्या अमित शाह के नीचे बैठा गृह मन्त्रालय पिछले 12 साल से रागणी गा रहा है कि अभी तक हुए एसआईआर में ही देश में 14 करोड़ घुसपैठिये निकल गये? मोदी के चाटुकार मंत्री किरण रिजिजू ने ही संसद में बयान दिया है कि देश में करीब 2 करोड़ बंगलादेशी घुसपैठिये हैं, हालाँकि यह कतई फ़र्जी तौर पर बढ़ाकर दिखाया गया आँकड़ा है। 2004 में तब के गृह राज्य मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल ने बताया था कि बंगलादेशी घुसपैठियों की संख्या 1 करोड़ है। तो क्या मोदी-शाह शासन

काल में यह संख्या बढ़कर 2 करोड़ हो गयी! तब तो मोदी और शाह की “मज़बूत सरकार” को फ़ौरन इस्तीफ़ा दे देना चाहिए!

वास्तव में, सच्चाई यह है कि बंगलादेशी “घुसपैठियों” के बाबत की जा रही इस भाजपाई बकवास का असली मक़सद ग़रीब मेहनतकश मुसलमानों को निशाना बनाना है। ऐसे बहुतेरे मामले सामने आ चुके जिसमें आम मुसलमान ग़रीब व्यक्तियों को बंगलादेशी-बंगलादेशी बोलकर निशाना बनाया गया और बाद में पता चला कि वह व्यक्ति बंगलादेश से नहीं आया था। इसके अलावा, पूरी दुनिया में सभी देशों में वैध और अवैध आप्रवासी मज़दूरों की एक आबादी मौजूद है। हर जगह ही दक्षिणपंथी और फ़ासीवादी पार्टियाँ अपने देश के बहुसंख्यक नस्ली, धार्मिक या एथनिक आबादी के सामने इस आबादी को एक नक़ली दुश्मन के तौर पर पेश करती हैं और देश की समस्याओं का ठीकरा उसके सिर फोड़कर पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति धन्नासेटों के वर्ग को अपराधमुक्त करने का प्रयास करती हैं। इस पर क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग का रवैया क्या होगा? ये “घुसपैठिये” आम तौर पर कौन होते हैं? ये आम तौर पर रोज़ी-रोटी के लिए दर-ब-दर होने वाली मज़दूर आबादी होती है, अपने देश में अपने धर्म, जाति या जातीयता के आधार पर उत्पीड़न और बर्बर हत्याकाण्ड झेलने वाली ग़रीब दुखियारी जनता होती है। ये कोई नुक़सान पहुँचाने, साज़िश करने, या देश की जनता के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र करने के लिए आये लोग नहीं होते। प्यू रिसर्च सेण्टर के अनुसार केवल अमेरिका में 7.5 लाख अवैध भारतीय प्रवासी हैं। कनाडा में, पश्चिम एशिया के तमाम देशों में, दक्षिण-पूर्व एशिया के कई देशों में, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में और कई यूरोपीय देशों में भी लाखों अवैध भारतीय प्रवासी मौजूद हैं। ये कौन हैं? ये भी मज़दूर हैं, मेहनतकश हैं। इनको भी इन देशों की दक्षिणपंथी और भाजपा-सरीखी फ़ासीवादी पार्टियाँ उसी तरीक़े से निशाना बना रही हैं, जैसे हमारे देश में भाजपा बंगलादेशी घुसपैठियों का हौव्वा खड़ा करके कर रही है। वास्तव में, देश की जनता को कुछ लाख बंगलादेशी आप्रवासी मज़दूरों से ख़तरा नहीं है, बल्कि उसे भाजपाई फ़ासीवाद से और उस वर्ग से ख़तरा है जिसकी यह भाजपाई फ़ासीवाद सेवा करता है, यानी, अडाली, अम्बानी, टाटा, बिड़ला, आदि से, यानी पूँजीपति वर्ग से, पूँजीवादी व्यवस्था से जो मेहनत और कुदरत को लूटकर इस देश को ग़रीबी, बदहाली, दुख के समन्दर में धकेल रही है। ठीक इसीलिए कि इन

असली अपराधियों को कठघरे से बाहर किया जा सके, कभी रोहिंया-रोहिंया का शोर मचाया जाता है, कभी बंगलादेशी-बंगलादेशी का शोर मचाया जाता है और जनता को बेवकूफ़ बनाया जाता है। वैसे भी जब देश की सीमाओं का नियन्त्रण गृह मन्त्रालय के हाथों में है, तो अवैध आप्रवासियों की संख्या में किसी भी बढ़ोत्तरी की ज़िम्मेदार भाजपा सरकार ही है। दूसरे, इन अवैध आप्रवासियों की संख्या मामूली है और उसकी वजह से हमारे देश की सारी समस्याएँ नहीं पैदा हुई हैं।

बहरहाल, इतना स्पष्ट है कि एसआईआर जनता के एक अच्छे-खासे हिस्से का मताधिकार छीनने के लिए फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा की गयी साज़िश है। इसका पुरजोर विरोध देश की आम जनता को करना होगा, अन्यथा उनका बुनियादी राजनीतिक अधिकार यानी वोट देने का अधिकार उनसे छीन लिया जायेगा। भाजपा का नारा है कि मतदाता सरकार को चुनें, इससे पहले भाजपा सरकार मतदाताओं को चुनेगी! यह पूँजीवादी लोकतन्त्र के मानकों के अनुसार भी जनता के बुनियादी जनवादी अधिकारों का निषेध है।

एसआईआर के अतिरिक्त भाजपा द्वारा देश की चुनावी प्रणाली पर आन्तरिक कबज़े के कुछ अन्य पहलू

हमें महज़ एसआईआर के विरुद्ध ही नहीं लड़ना है, बल्कि भारत की समूची चुनावी प्रक्रिया, संस्थाओं और मशीनरी के भाजपा की मोदी-शाह सरकार द्वारा फ़ासीवादी भ्रष्टीकरण के विरुद्ध लड़ना है। क्यों? इसलिए क्योंकि एसआईआर के आने के पहले से ही एक भयंकर ईवीएम घोटाला जारी है। इसके बहुत से स्पष्ट संकेत और तथ्य मौजूद हैं, जिन पर बार-बार सर्वोच्च न्यायालय तक में याचिकाएँ दायर की गयी हैं। लेकिन जिस प्रकार भारत की चुनावी मशीनरी पर संघ परिवार व भाजपा सरकार ने अन्दर से क़ब्ज़ा कर लिया है, उसी प्रकार भारत की न्यायपालिका पर भी उन्होंने अन्दर से क़ब्ज़ा किया है। इसके दर्जनों प्रमाण हर माह देश के सामने उपस्थित हो रहे हैं। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने ईवीएम पर कोई हस्तक्षेप नहीं किया और ईवीएम घपला जारी रहने दिया। उसी प्रकार, एसआईआर पर भी सर्वोच्च न्यायालय बस नामों के ज़्यादा कटने पर ‘जाने भी दो यारो’ फिल्म के धृतराष्ट्र की तरह ‘ये क्या हो रहा है-ये क्या हो रहा है’ बोलता रहता है! एक न्यायाधीश जॉयमाल्या बागची ने तो एक वैध वोटर के नाम कटने पर दायर

(पेज 6 पर जारी)

एसआईआर को रद्द कराने और ईवीएम को प्रतिबन्धित कराने के जुझारू संघर्ष के लिए आम जनता को एकजुट होना होगा!

(पेज 5 से आगे)

याचिका पर कहा कि “इस चुनाव में वोट नहीं दे पाये तो क्या हुआ, अगले चुनावों में दे देना!” जरा सोचें यह कैसा भयंकर तर्क है। इस प्रकार पश्चिम बंगाल के 27 लाख वोटों से न्यायपालिका ने कहा कि कोई बात नहीं, इस चुनाव में वोट नहीं दे सके, तो अगले चुनावों में दे देना! इस पर क्या बोला जा सकता है सिवाय इसके कि भारतीय न्यायपालिका में संघ परिवार और भाजपा का आन्तरिक क़ब्ज़ा हो गया है?

ईवीएम के जारी घपले के अलावा मतगणना घोटाला भी जारी है। चुनाव आयोग चुनावों के बाद जो मतदान के आँकड़े जारी करता है, उसमें आखिरी घण्टों के दौरान करोड़ों वोटों का अन्तर आ जाता है! इस पर बार-बार सवाल उठते हैं, लेकिन चुनाव आयोग कोई जवाब नहीं देता। ये सारे कुकर्म चुनाव आयोग फ़ासीवादी भाजपा के पक्ष में बिना किसी दिक्कत के कर सके, इसके लिए **केन्द्रीय चुनाव आयुक्त की नियुक्ति के नियम भी भाजपा की फ़ासीवादी मोदी-शाह सरकार ने बदल दिये**। पहले केन्द्रीय चुनाव आयुक्त की नियुक्ति की अनुशंसा करने वाले पैनल में सरकार, विपक्ष के एक-एक प्रतिनिधि के साथ भारत के मुख्य न्यायाधीश होते थे। लेकिन अब उसमें सरकार के दो प्रतिनिधि होंगे और विपक्ष का एक प्रतिनिधि। वैसे तो न्यायपालिका के संघ परिवार द्वारा आन्तरिक क़ब्ज़े के बाद के हालात में मुख्य न्यायाधीश भी सरकारी प्रतिनिधि जैसा बर्ताव ही करते, इसकी गुंजाइश ही ज़्यादा है! जैसे कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सूर्यकान्त ने ज्ञानेश कुमार की बेटी डी.एम. मेधा रूपम को बचाने के लिए नोएडा मज़दूर आन्दोलन सम्बन्धी एक याचिका को स्थापित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए एक ऐसी बेंच के सामने भेज दिया जो मेधा रूपम को नोएडा के मज़दूर कार्यकर्ताओं पर नाजायज़ तरीक़े से रासुका थोपने के कारण लगे भारी जुर्माने से राहत देती और ऐसा ही हुआ! इसी प्रकार, जस्टिस सूर्यकान्त ने अपने कार्यकाल में अब तक ही जो गुल खिला दिये हैं, वह लम्बे समय तक जनस्मृति में दर्ज रहेगा। बहरहाल, निष्पक्षता के किसी दिखावे को भी त्यागते हुए अब केन्द्रीय चुनाव आयोग के मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति को पूरी तरह से सरकार की इच्छा पर निर्भर बना दिया गया है। ऐसे में, कोई भी चुनाव आयुक्त आवे वह भाजपा का टट्टू ही होगा, जैसा कि पिछले कुछ चुनाव आयुक्त सिद्ध कर चुके हैं।

इसके अलावा, केन्द्रीय चुनाव

आयुक्त अपने इन कुकर्मों के लिए कभी किसी आपराधिक मुक़दमे का सामना करके जेल की हवा न खाएँ इसके लिए विपक्ष के 140 से ज़्यादा सांसदों को निलम्बित कर मोदी-शाह सरकार ने एक नया क़ानून ही बना दिया कि “अपने कर्तव्यों के निर्वाह” में केन्द्रीय चुनाव आयुक्त कुछ भी करे, उस पर कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं हो सकती है!

कुल मिलाकर, देश की समूची चुनावी पद्धति, प्रणाली, संस्थाओं और प्रक्रियाओं के पूँजीवादी जनवादी चरित्र को भी भाजपा की मोदी-शाह सरकार ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। सच है कि पूँजीवादी समाज में चुनावों में भी धनबल हावी होता है। आम तौर पर जिस पूँजीवादी पार्टी के पीछे देश का पूँजीपति वर्ग खड़ा होता है, आम जनता के दिमाग़ में उसी के प्रति समर्थन और सहमति का पूँजीवादी मीडिया घरानों, अखबारों, रेडियो, टीवी आदि द्वारा निर्माण किया जाता है। ऐसे में, जनता वोट अवश्य देती है, लेकिन आम तौर पर उसके पास कोई वास्तविक विकल्प, यानी पूँजीवादी विकल्पों के अलावा कोई विकल्प नहीं होता। इसमें ज़्यादा से ज़्यादा जनता सत्ताधारी पूँजीवादी पार्टी को उसकी पूँजीपरस्ती और श्रमिक-विरोधी होने के लिए दण्डित कर, पूँजीपरस्ती करने का अधिकार अगले पाँच वर्ष किसी अन्य पूँजीवादी पार्टी को दे सकती है और इस प्रक्रिया में उसे कुछ तात्कालिक राहत, कुछ ख़ैरात, कुछ पैबन्दसाज़ी हासिल हो सकती है। फ़ासीवाद यह अधिकार भी जनता से छीनता जाता है।

हमारे तात्कालिक कार्यभार हिटलर की नात्सी पार्टी और मुसोलीनी की फ़ासीवादी पार्टी ने पूँजीवादी जनवाद को ख़त्म करने का और जनता के पूँजीवादी जनवादी अधिकारों को निरस्त करने का फ़ासीवाद का यह प्रकार्य जर्मनी और इटली में चुनावों और मताधिकार पर ही खुली पाबन्दी लगाकर किया था। इसका नतीजा यह हुआ था कि अन्त में हिटलर और मुसोलीनी की जनता ने न सिर्फ़ सरकारी सत्ता से विदाई की, बल्कि उनकी राज्यसत्ता से और यहाँ तक कि जीवन से ही उनकी विदाई कर दी! आज के फ़ासीवादियों ने अपने इन पुरखों की ग़लतियों से सबक लिया है। उनकी समझ में यह बात आयी है कि आज के दौर में कहीं भी खुले तौर पर चुनावों, संसद, विधानसभा, मत देने के अधिकार आदि पर पाबन्दी नहीं लगायी जा सकती है, बशर्ते कि आप अपना अन्त हिटलर या मुसोलीनी

जैसा नहीं चाहते। आज पूँजीवादी जनवाद के खोल/रूप को त्यागना हानिकर होगा और यह फ़ासीवादियों की हार और उनके अन्त को केवल उनके सरकारी सत्ता से बाहर होने तक सीमित नहीं रखेगा, बल्कि उन्हें इतिहास के रंगमंच से ही लम्बे समय तक उठाकर बाहर फेंक देगा, जैसा कि जर्मन नात्सीवाद और इतालवी फ़ासीवाद के साथ हुआ था। **इसलिए अब पूँजीवादी जनवाद के खोल/रूप को बरकरार रखा जाता है जबकि उसकी अन्तर्वस्तु को फ़ासीवादी शक्तियाँ निरन्तर पगुराती और चबाती जाती हैं और उसका निरन्तर हास होता रहता है।**

यह प्रक्रिया कभी पूर्णता तक नहीं पहुँच सकती, बल्कि एक सतत् जारी प्रक्रिया का स्वरूप धारण करती है। पूँजीवादी व्यवस्था का पूँजीवादी जनवादी रूप औपचारिक तौर पर बना रहता है, मगर उसकी राजनीतिक अन्तर्वस्तु सतत् क्षरण और हास की अवस्था में रहती है। इसी वजह से क्षरण और हास की प्रक्रिया कभी पूर्णता पर नहीं पहुँचती। वजह यह कि पूँजीवादी जनवाद के खोल/रूप को बरकरार रखने की बाध्यता एक प्रति-गति, यानी विपरीत दिशा में भी एक गति पैदा करती है, जिसके कारण यह प्रक्रिया अपनी सीमाओं से टकराती है। ऐसे दौरों में, फ़ासीवादी शासन व सरकार बुरी तरह से अलोकप्रिय हो जाते हैं और उनका सरकारी सत्ता से बाहर होना सम्भव हो जाता है। आज हम ऐसे ही दौर में जी रहे हैं।

फ़ासीवादी मोदी सरकार अभूतपूर्व रूप से अलोकप्रिय हो चुकी है और उसके खिलाफ़ जनता के विभिन्न वर्ग और हिस्से बार-बार सड़कों पर उतर रहे हैं। जनता के प्रतिरोध की लहर पर सवारी करते हुए कोई अन्य पूँजीवादी पार्टी या पूँजीवादी पार्टियों का गठबन्धन 2029 के आम चुनावों में सत्ता में पहुँच सकता है। इस *सम्भावना* से कतई इनकार नहीं किया जा सकता। *लेकिन यह भी तभी सम्भव होगा, जब आम मेहनतकश जनता एक प्राथमिक क्रदम के तौर पर एसआईआर को रद्द करने, एसआईआर के बाद हुए सारे राज्य चुनावों को रद्द कर पुनः पुरानी वोटर लिस्ट पर चुनावों को आयोजित कराने, नये युवा वयस्क वोटों का तत्काल पंजीकरण करवाने (जिस काम को फ़ॉर्म-6 में बदलाव करके मोदी-शाह सरकार ने लगभग नामुमकिन बना दिया है), ईवीएम पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने और आने वाले सभी चुनाव बैलट पेपर से करवाने की माँगों को लेकर, यानी समूची चुनावी मशीनरी के फ़ासीवादी भ्रष्टीकरण को रद्द करने की माँगों को लेकर सड़कों पर उतरकर*

संघर्ष नहीं करती। किसी भी अन्य पूँजीवादी या टुटपुँजिया पूँजीवादी दल में यह शक्ति नहीं है कि सड़कों पर उतरकर तृणमूल स्तर से निर्मित एक शक्तिशाली जनान्दोलन खड़ा करे और उसे जुझारू तरीक़े से विजय प्राप्त होने तक चलाये। यह याद दिलाना ज़रूरी है कि अगर फ़ासीवादी भाजपा 2029 में चुनव हार कर सरकारी सत्ता से बाहर भी हो जाये, तो राज्यसत्ता के समूचे उपकरण पर उसके आन्तरिक क़ब्ज़े की समाप्ति नहीं होगी। न ही समाज के पोरों में उनकी व्याप्ति और घुसपैठ की समाप्ति होगी। ये दोनों घुसपैठ, समाज में और राज्यसत्ता के उपकरण में, पिछले 100 वर्षों में और विशेष तौर पर पिछले लगभग 75 वर्षों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा संस्थाबद्ध कार्य के ज़रिये की गयी है। यह महज़ भाजपा के सरकारी सत्ता से अस्थायी तौर पर बाहर होने पर समाप्त नहीं होगी। पहले भी नहीं हुई है। दीर्घकालिक आर्थिक संकट के दौर में समाज में विशेष तौर टुटपुँजिया यानी निम्न मध्यवर्गों में मौजूद सामाजिक व आर्थिक असुरक्षा और अनिश्चितता बार-बार एक अन्धी प्रतिक्रिया का माहौल पैदा करने की सम्भावना पैदा करेंगे, जो क्रान्तिकारी शक्तियों की दखलन्दाज़ी के बिना बार-बार वास्तविकता में तब्दील होगी। यही अन्धी प्रतिक्रिया फ़ासीवादियों को बार-बार सरकार में सत्तारोहण करने का अवसर देगी और हर बार फ़ासीवादी प्रतिक्रियावादी टुटपुँजिया सामाजिक आन्दोलन और भी ज़्यादा उग्र रूप में उभरेगा और फ़ासीवादी शक्तियाँ और भी प्रबलता से सरकारी सत्ता में पहुँचेंगी। पूँजीपति वर्ग मन्दी के दौर में अपनी समूची आर्थिक शक्तिमत्ता को फ़ासीवादी पार्टी के समर्थन में खड़ा करेगा क्योंकि मन्दी उसे किसी भी प्रकार के राजनीतिक उदारवाद, मध्यमार्ग आदि की इजाज़त लम्बे समय तक नहीं देगी। पूँजीपति वर्ग की आर्थिक शक्ति के समर्थन और टुटपुँजिया वर्गों के प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन और साथ ही एक सदी में राज्यसत्ता के उपकरण और समाज के ताने-बाने में की गयी संस्थाबद्ध घुसपैठ के ज़रिये फ़ासीवादी पार्टी फिर-फिर सरकारी सत्ता में पहुँचेगी। **इस पूरे दौर को हम उत्तरवर्ती पूँजीवाद के दीर्घकालिक संकटग्रस्तता का प्रतिक्रियावादी दौर कह सकते हैं, जिसमें उन सभी देशों में जहाँ फ़ासीवादी विचारधारा से लैस और काडर-आधारित फ़ासीवादी संगठन मौजूद होगा, वहाँ फ़ासीवादी शासन और सरकार बार-बार स्थापित होंगे। अब फ़ासीवाद का निर्णायक अन्त समाजवादी मज़दूर क्रान्ति के साथ ही सम्भव है। यहाँ यह ज़िक्र करना ज़रूरी है कि फ़ासीवाद के ये मंसूबे**

उस सूरत में ही कामयाब होते हैं, जिसमें **क्रान्तिकारी शक्तियाँ कमज़ोर और बिखरी हुई होती हैं, मज़दूर वर्ग असंगठित होता है, मज़दूर आन्दोलन में सर्वहारा विचारधारा और राजनीतिक लाइन का अभाव होता है।** यदि कोई क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी मौजूद होती है तो वह फ़ासीवादी विचारधारात्मक और राजनीतिक प्रचार का जवाब देते हुए व्यापक टुटपुँजिया व मध्यवर्ग की आबादी में यह स्पष्ट कर सकती है कि उसके जीवन में मौजूद सामाजिक व आर्थिक असुरक्षा व अनिश्चितता पूँजीवादी व्यवस्था के तोहफ़े हैं, उसका दुश्मन कोई मुसलमान, कोई प्रवासी, कोई यहूदी आम आदमी नहीं है, बल्कि पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग है, कि धर्म और आस्था पूरी तरह से व्यक्तिगत मसला होते हैं और उनका सामाजिक और राजनीतिक जीवन में कोई स्थान नहीं होना चाहिए, कि उन्हें समाजवादी व्यवस्था में ही पक्की नौकरी, इज़्जत-आसूदगी की ज़िन्दगी, बेहतर समान व निःशुल्क शिक्षा, चिकित्सा, आवास का अधिकार मिल सकता है। इस क्रान्तिकारी राजनीतिक व विचारधारात्मक प्रचार को अधिकतम सम्भव सूक्ष्म, व्यापक और विकसित रूप में और रचनात्मक रूप में आयोजित करके क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी जनता के वर्गों, यानी मज़दूर वर्ग, शहरी व ग्रामीण अर्द्धसर्वहारा वर्ग व मध्यवर्ग के बीच एक क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चा बना सकती है, एक फ़ासीवाद-विरोधी जुझारू जनान्दोलन खड़ा कर सकती है और समाजवादी क्रान्ति की दिशा में व्यापक मेहनतकश जनता की अगुवाई कर सकती है।

लेकिन ये सारे कार्यभार पूर्ण करने के लिए क्रान्तिकारी शक्तियों को ज़मीन पर हरेक राजनीतिक जनवादी अधिकार के लिए क्रदम-क्रदम पर लड़ना होगा, जिसमें मताधिकार विशेष महत्व रखता है। उसे हर जगह जनवादी स्पेस के लिए संघर्ष करना होगा। उसे हर वर्ग व समुदाय के जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा। यही वह ज़मीन तैयार करता है, जिस पर क्रान्तिकारी मज़दूर संगठन व्यापक मेहनतकश जनता को समूची पूँजीवादी व्यवस्था के ध्वंस के लिए संगठित कर सकता है। इसलिए आज फ़ासीवादी शक्तियों को सरकारी सत्ता से बाहर करने का संघर्ष हमारे लिए एक महत्वपूर्ण तात्कालिक राजनीतिक कार्यभार है। यह क्रान्तिकारी शक्तियों और क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को एक मोहलत देगा कि वह अपने आपको भावी निर्णायक संघर्षों के लिए व्यापक मेहनतकश जनता को जागृत, गोलबन्द और संगठित कर सके। इसके लिए (पेज 7 पर जारी)

हरियाणा के सफ़ाई कर्मचारियों की जुझारू हड़ताल समाप्त—16 सूत्री माँगों पर समझौता! लेकिन भाजपा सरकार की वायदाख़िलाफ़ी से रहना होगा सावधान!

● अजय

हरियाणा में मई माह की हड़ताल के दौरान हुए समझौते से सरकार के मुकर जाने के बाद 6 अगस्त से सफ़ाई कर्मचारी और अग्निशमनकर्मों दोबारा भाजपा सरकार के ख़िलाफ़ हड़ताल पर थे। इससे पहले मई माह में भी कर्मचारी यूनियन ने 14 दिनों तक हड़ताल की थी। इस हड़ताल के दौरान 13 मई को सरकार और कर्मचारी यूनियन के बीच हुई बातचीत में उनकी 22 सूत्री माँगों में से 17 माँगों पर सहमति बनी थी और सरकार ने इन्हें 30 जून तक लागू करने का भरोसा दिया था। लेकिन जैसे ही कर्मचारियों ने हड़ताल स्थगित कर काम पर वापसी की, सरकार ने अपने वायदों से मुकरना शुरू कर दिया। यह भाजपा सरकार की पुरानी चाल रही है।

इसी वजह से अगस्त माह के पहले सप्ताह से हरियाणा की नगर पालिकाओं, नगर निगमों और नगर परिषदों से जुड़े हज़ारों कर्मचारी हड़ताल पर चले गये। हरियाणा की नगर पालिकाओं, नगर निगमों और नगर परिषदों में करीब 35 हज़ार कर्मचारी हैं। इन कर्मचारियों में पक्के कर्मचारियों की संख्या नाममात्र की है। ज़्यादातर कर्मचारी पे-रोल और डोर-टू-डोर कूड़ा उठाने वाली ठेका कंपनियों के ठेका मज़दूर हैं।

कर्मचारियों की प्रमुख माँगों में कच्चे कर्मचारियों को पक्का करना, न्यूनतम वेतन 30,000 रुपये करना और समान काम के लिए समान वेतन लागू करना आदि माँगें शामिल थीं। साथ ही, अग्निशमन कर्मचारी यूनियन ने भी अपने साथियों के साथ न्याय की माँग को लेकर हड़ताल में भाग लिया। उनकी प्रमुख माँगों में 16 फ़रवरी को फ़रीदाबाद में हुई आगजनी की घटना में मारे गये दो कर्मचारियों को शहीद का दर्जा देना और उनके परिवारों को एक करोड़ रुपये का मुआवज़ा देना शामिल था।

37 दिनों तक चली इस हड़ताल के दौरान भाजपा सरकार हड़ताल को तोड़ने के लिए पुलिस-प्रशासन से लेकर सरकारी दलालों तक का इस्तेमाल करती रही। हिसार-हांसी से लेकर सिरसा तक सफ़ाईकर्मों महिलाओं के साथ पुलिस द्वारा ज़ोर-

ज़बरदस्ती की गयी और उन्हें रात-रात भर पुलिस हिरासत में रखा गया। असल में सरकार डरा-धमकाकर हड़ताल को तोड़ना चाहती थी। लेकिन महिला मज़दूरों ने सड़कों पर पूरी चौकसी के साथ मोर्चा सम्भाले रखा और हड़ताल को तोड़ने व कमज़ोर करने के सरकार के सारे मंसूबों को नाकाम कर दिया। इसके बाद भाजपा सरकार ने 5 सितम्बर को एस्मा (ESMA) के तहत कार्रवाई करते हुए हड़ताल को तोड़ने की कोशिश की जिसमें सैकड़ों कर्मचारियों को निलम्बित किया गया और कई मज़दूर नेताओं को काम में बाधा डालने के नाम पर जेल में डाल दिया गया। लेकिन मज़दूरों पर चले इस दमनचक्र के बावजूद हड़ताल कर रहे मज़दूरों का हौसला नहीं टूटा।

10 सितम्बर से हड़ताल कर रहे मज़दूरों ने जनसमर्थन जुटाने के लिए शहरों की कॉलोनियों में अभियान शुरू कर दिया। साथ ही, यूनियन द्वारा 13 सितम्बर को कुरुक्षेत्र में होने वाली महापंचायत में अन्य मज़दूर-कर्मचारी संगठनों तथा छात्र-युवा संगठनों से शामिल होने की अपील की गयी। हड़ताल के पक्ष में बढ़ते जनसमर्थन और उसके दबाव में हरियाणा सरकार ने 11 सितम्बर को यूनियन प्रतिनिधियों से वार्ता की और 16 सूत्री माँगों पर समझौता किया।

ज़ाहिरा तौर पर यह सफ़ाई कर्मचारी आन्दोलन की एक बड़ी जीत हो सकती है यदि नायब सिंह सैनी सरकार इन सभी माँगों को पूरी तरह लागू करती है तो। लेकिन भाजपा का पुराना ट्रैक रिकॉर्ड वायदों से मुकरने का रहा है। इसलिए मज़दूरों और यूनियन को चौकस रहना होगा और लगातार सड़क के आन्दोलन की तैयारी रखनी होगी। वहीं इस समझौते के लागू होने पर पे-रोल पर कार्यरत अस्थायी कर्मचारियों के पक्का होने का रास्ता ज़रूर खुलता है। मगर इस हड़ताल में बड़ी संख्या में ठेका मज़दूर भी शामिल थे, जिनके सम्बन्ध में समझौते में सरकार ने यूनियन से कोई ठोस बात नहीं की है।

हड़ताल को समर्थन दे रही ‘नौजवान भारत सभा’ और ‘भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी’ ने भी यूनियन

नेताओं को सुझाव दिया है कि चूँकि हड़ताल में ठेका प्रथा ख़त्म करने की माँग एक प्रमुख माँग थी, ऐसे में यूनियन नेतृत्व को ठेका मज़दूरों को कम-से-कम सरकार के पे-रोल पर लाने की



आने लगी। लगभग 10 से ज़्यादा नगर पालिकाओं और परिषदों में हड़ताल पर गये ठेका मज़दूरों को काम पर लेने से मना कर दिया गया। ऐसे में यूनियन को सरकार को चेतावनी देनी चाहिए कि सभी मज़दूरों को वापस काम पर लिया जाये और निश्चित समय-सीमा के भीतर ठेका कंपनियों को हटाकर इन ठेका मज़दूरों को पक्का किया जाये।



ठेका व्यवस्था के ज़रिये सफ़ाई कर्मचारियों का खुला शोषण।

हड़ताल में शामिल डोर-टू-डोर कंपनी में कार्यरत एक सफ़ाईकर्मों ने बताया कि नगर पालिका में पिछले 10-12 वर्षों से बड़ी संख्या में कच्चे और ठेका कर्मचारी काम कर रहे हैं। कलायत नगर पालिका डोर-टू-डोर सफ़ाई के लिए ठेकेदार को करीब 25 लाख रुपये प्रति माह देती है और सफ़ाई व्यवस्था के नाम पर करीब 10 लाख रुपये अलग से दिये जाते हैं। यानी कुल मिलाकर हर महीने करीब 35 लाख रुपये ठेकेदार के पास जाते हैं। इसके बावजूद ठेका कंपनी मज़दूरों को पूरा मेहनताना देने के बजाय उनके हिस्से में महज़ 12-13 हज़ार रुपये महीना डालती है। बाक़ी रक़म ठेकेदारों की जेब में जाती है। इस तरह सरकार के पैसे से ठेकेदार मोटा मुनाफ़ा कमा रहे हैं और उसकी क्रीमत सफ़ाई मज़दूरों को अपने खून-पसीने से चुकानी पड़ रही है।

हरियाणा की नगर पालिकाओं, नगर परिषदों और नगर निगमों के तहत प्रदेश के करीब 80 शहरों और 6,754 गाँवों में लगभग 35 हज़ार सफ़ाई कर्मचारी काम करते हैं। हरियाणा की करीब ढाई करोड़ आबादी के लिहाज़ से आबादी के अनुपात में लगभग 62 हज़ार सफ़ाई कर्मचारियों की ज़रूरत है। यानी सरकार ज़रूरत के मुकाबले करीब आधे सफ़ाई कर्मचारियों से ही पूरे प्रदेश की सफ़ाई व्यवस्था का बोझ उठवा रही है। उसमें भी बड़ी संख्या में कर्मचारी अस्थायी और ठेका व्यवस्था के तहत काम करने को मजबूर हैं।

सफ़ाई मज़दूरों को कई जगह बिना दस्ताने, मास्क, बूट और दूसरे ज़रूरी सुरक्षा उपकरणों के काम करना पड़ता है। गन्दगी और ज़हरीले पदार्थों के लगातार सम्पर्क में रहने से अनेक मज़दूर गम्भीर बीमारियों का शिकार होते हैं। वहीं, सीवर और गन्दे नालों में बिना पर्याप्त सुरक्षा इंतज़ामात के उतरने वाले मज़दूर ज़हरीली गैसों का शिकार होकर अपनी जान तक गँवा देते हैं।

यूँ तो मोदी सरकार सफ़ाईकर्मियों के चरण धोने की नौटंकी करती है। ‘स्वच्छ भारत अभियान’ जैसे तमाशों में तमाम खाये-पिये-अघाये भाजपाई हाथों में झाड़ू उठाकर फ़ोटो खिंचवाने का ढोंग करते हैं, लेकिन इस नौटंकी से आगे बढ़कर सफ़ाईकर्मियों के बदतर हालात की किसी को कोई फ़िक्र नहीं है। वहीं सरकार में बैठे कृष्णा बेदी जैसा अवसरवादी नेता भी हड़ताल के दौरान कर्मचारियों को सबक सिखाने और सख़्त कार्रवाई का आदेश देता रहा था। असल में जाति-आधारित पहचान की राजनीति करने वाले इन धोखेबाज़ नेताओं से कोई उम्मीद पालना बेमानी है। मेहनतकश वर्ग का हर आन्दोलन जात-पात के नाम पर खड़े किये गये नक़ली नेताओं की असली पहचान करवा देता है। हरियाणा के सफ़ाई कर्मचारियों के आन्दोलन को तोड़ने में भाजपा के दलित नेता ही ठेकेदार की भूमिका निभा रहे थे और उनके असली चेहरे हड़ताल के दौरान उज्जगर भी हो गये। इसलिए मेहनतकश वर्ग के संघर्ष में कमरों की वर्गीय एकजुटता कायम रखनी चाहिए और लुटेरे वर्ग का पर्दाफाश करना चाहिए—चाहे वह किसी भी धर्म या जाति का हो।

एसआईआर को रद्द कराने और ईवीएम को प्रतिबन्धित कराने के जुझारू संघर्ष के लिए आम जनता को एकजुट होना होगा!

(पेज 6 से आगे)

एसआईआर व समूचे चुनावी घपले द्वारा जनता के सबसे बुनियादी राजनीतिक जनवादी अधिकारों में से एक, यानी वोट देने के अधिकार के अपहरण के विरुद्ध जुझारू और ज़मीनी संघर्ष करना होगा। एक नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के संघर्ष की ज़मीन तैयार करने के लिए यह

अनिवार्य है।

यह आज फ़ासीवाद-विरोधी मज़दूर वर्गीय कार्यभारों में प्रमुख तात्कालिक कार्यभार है। पूरे देश की जनता में एसआईआर और ईवीएम के विरुद्ध गहरी भावना है। उसके अन्दर मौजूदा मोदी-शाह सरकार के विरुद्ध भारी गुस्सा और नफ़रत है। वह महंगाई, बेरोज़गारी, पहुँच से दूर होती शिक्षा,

परीक्षा घोटालों, भुखमरी, ग़रीबी और भ्रष्टाचार से त्रस्त है। इन समस्याओं का समाधान पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे में सम्भव नहीं है। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने और मेहनतकशों की सत्ता और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के संघर्ष को एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में संगठित करने का पहला तात्कालिक

क़दम ही फ़ासीवादी शक्तियों को सरकारी सत्ता से बाहर करना है। यह क्रान्तिकारी सर्वहारा संगठन को अपनी शक्तियों को संचित करने, उन्हें पंक्तिबद्ध करने और निर्णायक संघर्ष के लिए तैयार करने का अवसर देगा। और फ़ासीवादी शक्तियों को सरकारी सत्ता से बाहर करना पहला अहम तात्कालिक कार्यभार है और इसके

लिए आज के दौर में सबसे पहले भाजपा सरकार द्वारा लागू एसआईआर, उसके द्वारा किये जा रहे ईवीएम घोटाले और मतगणना हेर-फेर के विरुद्ध सड़कों पर उतरना होगा।

सब याद रखा जायेगा! - दो

नोएडा मज़दूर आन्दोलन के दौरान गिरफ़्तार श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं व सामाजिक कार्यकर्ताओं को सलाखों के पीछे रखने की योगी सरकार की चालों को उत्तर प्रदेश के मज़दूर-मेहनतकश भूलेंगे नहीं!

● गायत्री भारद्वाज
ज्ञात हो कि अप्रैल 2026 में नोएडा में हुए स्वतःस्फूर्त मज़दूर आन्दोलन को योगी सरकार ने हर प्रकार के छल-प्रपंच द्वारा कुचलने का प्रयास किया था। इसमें मज़दूरों के व्हाट्सएप ग्रुपों में पुलिस के लोगों को घुसाकर मज़दूरों को हिंसा के लिए उकसाने से लेकर शान्तिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे मज़दूरों पर बर्बर दमन तक शामिल थे। इनमें से तमाम साज़िशें बाकायदा कैमरे पर कैद हो गयीं और यहाँ तक कि उनका सार्वजनिक तौर पर अखबारों, चैनलों, यूट्यूब आदि पर बार-बार खुलासा हो चुका है। इसके बावजूद, नोएडा में उत्तर प्रदेश सरकार व उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा की गयी नाजायज़ कार्रवाई के तहत गिरफ़्तार आठ सामाजिक व श्रम अधिकार कार्यकर्ता सत्यम वर्मा, रूपेश राय, आदित्य आनन्द, आकृति चौधरी, सृष्टि गुप्ता, मनीषा चौहान, हिमांशु ठाकुर और योगेश मीणा अभी भी सलाखों के पीछे हैं।

इस बीच ऐसे स्पष्ट वीडियो प्रमाण भी सामने आये जो यह इशारा करते हैं कि उत्तर प्रदेश पुलिस ने इन सामाजिक व राजनीतिक कार्यकर्ताओं को फँसाने के लिए नकली सबूत आरोपित करने का प्रयास किया है। साथ ही, पुलिस के क़ानूनी तौर पर गिरफ़्तारी के सारे दावे भी ग़लत साबित हो चुके हैं क्योंकि उत्तर प्रदेश पुलिस इन सभी कार्यकर्ताओं को अगवा किये जाने की तिथि को अदालत से लेकर मीडिया तक में ग़लत बताती रही है। मिसाल के तौर पर, उत्तर प्रदेश पुलिस ने सत्यम वर्मा को अगवा किये जाने की जगह पहले नोएडा बतायी थी और उसकी तारीख भी 19 अप्रैल बतायी थी। लेकिन जब वीडियो प्रमाण सामने आया कि सत्यम वर्मा को 17 अप्रैल की रात ही लखनऊ से ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से अगवा किया गया था, तो पुलिस ने अपनी बात बदल ली। इसी प्रकार रूपेश राय, आकृति चौधरी, सृष्टि गुप्ता और मनीषा चौहान को गिरफ़्तारी करने की तिथि भी 12 अप्रैल बतायी गयी है, जबकि इस बात के वीडियो प्रमाण मौजूद हैं कि इन्हें 11 अप्रैल को शाम करीब 7 बजे नोएडा के एक मेट्रो स्टेशन से अगवा किया गया था। ऐसे तमाम प्रामाण्य मौजूद हैं, जिनके विस्तार में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

गिरफ़्तार कार्यकर्ताओं में से दो पर, यानी सत्यम वर्मा और आकृति चौधरी पर उत्तर प्रदेश सरकार ने अन्यायपूर्ण क़ानून एन.एस.ए. (राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून) थोप दिया ताकि उन्हें अधिक

समय तक जेल में रखा जा सके। लेकिन इलाहाबाद उच्च न्यायालय की जस्टिस अतुल श्रीधरन और जस्टिस अचल सचदेव की पीठ ने आकृति चौधरी पर लगाये गये राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून को रद्द कर दिया, पुराने मामले को ही “मनगढ़न्त कहानी” करार दिया और उत्तर प्रदेश पुलिस व सरकार को ज़बर्दस्त फटकार लगाते हुए कहा कि उत्तर प्रदेश प्रशासन आकृति चौधरी पर रासुका लगाने के समर्थन में एक भी वाजिब सबूत नहीं पेश कर पाया है, यहाँ तक कि गिरफ़्तारी की प्रक्रिया के दौरान कोई भी क़ानूनी नियम व दिशा-निर्देश तक लागू नहीं किये गये हैं। केवल अपने राजनीतिक आक्राओं को प्रसन्न करने के लिए उत्तर प्रदेश पुलिस व प्रशासन ने एक 25 वर्षीय छात्रा और राजनीतिक कार्यकर्ता को प्रताड़ित करना जारी रखा है और उसे नाजायज़ तरीक़े से सलाखों के पीछे डाल रखा है। इसके लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एन.एस.ए. के आदेश को अनुशंसित करने वाली केचुआ आयुक्त ज्ञानेश कुमार की बेटी डी.एम. मेधा रूपम व अन्य अधिकारियों पर रु. 5 लाख का जुर्माना भी किया, जिसका भुगतान आकृति चौधरी को किया जाना था। इसके अलावा कोर्ट ने यह भी आदेश दिया कि डी.एम. मेधा रूपम के सर्विस रिकॉर्ड में इन अवांछनीय कार्रवाइयों को दर्ज किया जाये। लेकिन मोदी के चहेते केचुआ ज्ञानेश कुमार की पुत्री पर ऐसी कोई कार्रवाई हो पाती, भला यह कैसे सम्भव होता?

नतीजतन, मेधा रूपम इस फ़ैसले के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय जाती हैं, जहाँ उनकी त्रुटिपूर्ण पेटिशन को आनन-फ़ानन में कोर्ट सुनवाई के लिए लिस्ट कर देता है! मेधा रूपम का केस लड़ते हैं भारत के सॉलिसिटर जनरल तुषार मेहता! यानी देश के मज़दूरों-मेहनतकश के ख़र्च पर ही मज़दूरों के विरुद्ध क़ानूनी कार्रवाई का व्यय पूरा किया जाता है! इसके अलावा, उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से भी एक याचिका दायर की जाती है ताकि आकृति चौधरी लगे एन.एस.ए. को भी क़ायम रखा जा सके। इस याचिका पर जिरह करने कौन आता है? पूर्व एटॉर्नी जनरल मुकुल रोहतगी! इसके अलावा, इन दोनों याचिकाओं को उन चार बेंचों में से किसी के पास जाना चाहिए था जो मौजूदा लागू रोस्टर के अनुसार हेबियस कॉर्पस व प्रिवेण्टिव डिटेंशन सम्बन्धी

याचिकाओं पर सुनवाई कर रहे हैं और विशेष तौर पर वह बेंच जो नोएडा से जुड़े सारे मामलों की सुनवाई कर रही है। यह बेंच है जस्टिस नागरत्ना की। हर वकील से लेकर हर पत्रकार यह मानकर चल रहा था कि अगर स्थापित प्रक्रिया का पालन होता है तो ये दोनों याचिकाएँ जस्टिस नागरत्ना की बेंच के सामने आयेंगी जो पहले से ही नोएडा के तीन मसलों की सुनवाई कर रही है। लेकिन भारत के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस सूर्यकान्त (‘काँकरोच’ टिप्पणी वाले) ने इसे जस्टिस सतीश चन्द्र शर्मा और जस्टिस एन. के. सिंह की बेंच के पास भेज दिया, जो वर्तमान रोस्टर के अनुसार इस प्रकार की याचिकाएँ सुन ही नहीं रही थीं! इस प्रक्रिया-सम्बन्धी उल्लंघन के विषय में यह ख़बर पढ़ें: <https://www.livelaw.in/amp/articles/questions-raise-over-listing-of-noida-dm-medha-roopams-plea-in-supreme-court-5515161> ग़ौरतलब है कि जस्टिस सतीश चन्द्र शर्मा वही महानुभाव हैं जिन्होंने चुनाव आयोग के मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति सम्बन्धी विवाद के मुक़दमे में मोदी सरकार के पक्ष में अपनी टिप्पणियाँ की थीं।

बहरहाल, इस केस का मुख्य न्यायाधीश सूर्यकान्त द्वारा सतीश शर्मा की बेंच के पास भेजा जाना वकीलों व पत्रकारों के लिए चौंकाने वाला था, हालाँकि हम मज़दूर-मेहनतकश जानते हैं कि जब बात मज़दूर वर्ग व मेहनतकशों के वर्गीय हितों व अधिकारों की आती है, तो भारतीय न्याय प्रणाली किस प्रकार काम करती है। इसलिए किसी वर्ग-सचेत मज़दूर को इस पर ज़रा भी अचरज नहीं हुआ। अधिकांश मज़दूरों ने यही कहा कि यह तो होना ही था! भला मोदी के चहेते ज्ञानेश कुमार की बेटी मेधा रूपम पर कार्रवाई कैसे हो सकती है? भला मज़दूर हक़ों के लिए संघर्ष करने वालों पर एन.एस.ए. कैसे हटाया जा सकता है?

इसके बाद जब इस मामले की सुनवाई जस्टिस सतीश शर्मा की बेंच के सामने 23 सितम्बर 2026 को हुई तो उसमें अदालत के माइक बन्द कर दिये गये ताकि बाहर मौजूद पत्रकारों, वकीलों आदि को, जो वीडियो के ज़रिये इन मुक़दमों की सुनवाई को देख व सुन सकते

हैं, वे सुन ही न सकें कि दोनों पक्षों ने क्या जिरह की है और इस बात की पड़ताल ही न कर सकें कि न्यायाधीशों का निर्णय उचित है या अनुचित। ज़ाहिर है, किसी भी तरह उत्तर प्रदेश सरकार और योगी आदित्यनाथ के दबाव में केचुआ आयुक्त ज्ञानेश कुमार-पुत्री मेधा रूपम को बचाना था और साथ ही योगी सरकार द्वारा शान्तिपूर्ण तरीक़े से अपने जायज़ हक़ों की माँग कर रहे मज़दूरों के बर्बर दमन का बचाव किया जाना था!

हुआ वही जिसका अन्देश था : सर्वोच्च न्यायालय की जस्टिस सतीश शर्मा बेंच ने उत्तर प्रदेश सरकार और मेधा रूपम को अन्तरिम राहत देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के जस्टिस श्रीधरन व जस्टिस सचदेव के फ़ैसले पर अन्तरिम रोक लगा दी है।

यानी योगी सरकार और मोदी सरकार मिलकर अपनी पूरी ताक़त लगा देते हैं कि किसी भी क़ीमत पर योगी सरकार द्वारा मज़दूरों के आन्दोलन के दमन की हिमायत की जा सके, उसका क़ानूनी तौर पर बचाव किया जा सके और केचुआ ज्ञानेश कुमार की बेटी डी.एम. मेधा रूपम को बचाया जा सके। वहीं उन्होंने पूरा प्रयास किया है कि मज़दूर अधिकार कार्यकर्ताओं को अधिक से अधिक समय तक जेलों में रखा जा सके।

आज के समय में मज़दूरों के हक़ों के बारे में बोलना भी योगी सरकार और मोदी सरकार ने एक अघोषित अपराध बना दिया है। यही कारण है कि सितम्बर-मध्य तक नोएडा मसले में कार्यकर्ताओं पर की गयी करीब ग्यारह एफ़.आई.आर. में इलाहाबाद उच्च न्यायालय लगातार समानता के आधार पर सभी कार्यकर्ताओं को एक-एक करके ज़मानत देता जा रहा था। लेकिन आकृति चौधरी पर रासुका के हटने के इलाहाबाद हाई कोर्ट के निर्णय के बाद सभी को समानता के न्यायिक सिद्धान्त के आधार पर ज़मानत दे रहे उन्हीं न्यायाधीश महोदय ने ज़मानत देना बन्द कर दिया और सवा से लेकर डेढ़ महीने तक की लम्बी तारीखें देना शुरू कर दिया, जबकि सर्वोच्च न्यायालय का यह दिशा-निर्देश है कि सभी अदालतें ज़मानत की याचिकाओं पर एक माह के भीतर कार्रवाई पूरी करें। लम्बी तारीखें देते हुए उक्त न्यायाधीश ने कहा कि नोएडा मसले में तो “नेतागिरी” करने की बू

आ रही है! यानी उच्च न्यायालय से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक के रुख और तौर-तरीक़े में नोएडा मसले के सन्दर्भ में एक गुणात्मक बदलाव आ जाता है, जिसकी व्याख्या बिना योगी सरकार व मोदी सरकार के दबाव को जानने और मानने के बिना नहीं की जा सकती है।

यह शब्द न्यायालय से लेकर पुलिस प्रशासन व सरकारें तक मज़दूर कार्यकर्ताओं के बारे में बार-बार इस्तेमाल करते हैं। अगर कोई भी व्यक्ति मज़दूरों-मेहनतकशों के हक़ों को लेकर उन्हें जागृत, गोलबन्द व संगठित करता है, तो शासक वर्ग के ये सभी नुमाइन्दे बोलते हैं कि “नेतागिरी मत करो, राजनीति मत करो, वरना तुम्हें सबक सिखाया जायेगा!” लेकिन अगर मोदी, योगी, आदि अडाणी, अम्बानी, टाटा, बिड़ला के लिए काम करें, उनके पक्ष में संसद-विधानसभाओं में राजनीति करें, उनके धनबल के बूते चुनाव लड़ें, भाषण दें, तो वह नेतागिरी व राजनीति नहीं कहलायेगी क्या?

यानी, मज़दूरों व पूँजीपतियों के बीच मौजूद वर्ग-संघर्ष में राजनीति करने का, अपना नेतृत्व पैदा करने का (“नेतागिरी” करने का!) अधिकार केवल अमीरज़ादों और धन्नासेठों के नुमाइन्दों को ही है! अगर मज़दूर वर्ग संघर्ष करता है, सत्ता व शक्ति के लिए संघर्ष करता है, तो वह “नेतागिरी” करता है और अगर मोदी और योगी की सरकारें पूरी नंगई के साथ क़ानून व संविधान को ताक पर रखकर अम्बानी-अडाणी की सेवा, सिजदा और पायबोस करते हैं, तो उसे “राष्ट्रसेवा” कहा जाता है। लुब्बेलुआब यह कि मज़दूर वर्ग के लिए राजनीति करना, अपने हक़ों के लिए लड़ना, सत्ता व शक्ति के लिए लड़ना निषिद्ध व प्रतिबन्धित है और अगर वह ऐसा करता है, तो उसी समय उसे ठीक उसी प्रकार सबक सिखाने का प्रयास किया जाता है, जैसा कि नोएडा के मज़दूर आन्दोलन के बाद योगी सरकार और मोदी सरकार ने मिलकर किया है : हजारों मज़दूरों को गिरफ़्तार करना, उन्हें यातना देना, उन्हें आतंकित करना, मज़दूर वर्ग के कार्यकर्ताओं को ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से गिरफ़्तार करना, उन पर फ़र्जी मुक़दमे थोपना, न्यायपालिका पर दबाव डालकर उन्हें सलाखों के पीछे रखना।

आप और भी मसलों को याद करें : (पेज 9 पर जारी)

सब याद रखा जायेगा ! - दो

(पेज 8 से आगे)

क्या आपको याद आता है कि कभी पूँजीवादी न्यायपालिका से मज़दूरों और उनके क्रान्तिकारी प्रतिनिधियों को न्याय मिला हो? इसके विपरीत, क्या आपको याद है कि कभी पूँजीपतियों को अपनी माँगों को न्यायपालिका से पूरी करवाने में कोई देरी हुई हो? पूँजीपतियों के हितों की बात आती है तो अदालतों के दरवाज़े रात के 12 बजे भी खुल जाते हैं और आनन-फ़ानन में उनके पक्ष में फ़ैसला देकर उन्हें राहत दे दी जाती है। लेकिन मज़दूरों, मेहनतकशों व आम जनता को लम्बी-लम्बी तारीखें देकर अदालतों के चक्कर कटवाये जाते हैं और आम तौर पर बरसों तक हज़ारों-लाखों रुपये वक़ीलों की फ़ीसों पर खर्च करने के बावजूद उन्हें न्याय नहीं मिलता। और फ़ासीवादी मोदी सरकार व फ़ासीवादी योगी सरकार के राज में तो यह और भी भयंकर रूप धारण कर चुका है क्योंकि फ़ासीवादी पार्टी आर. एस.एस.-भाजपा ने समूची राज्यसत्ता

के सभी अंगों, पुलिस, सेना, नौकरशाही, न्यायपालिका तक में अपने आन्तरिक घुसपैठ के ज़रिये एक कब्ज़ा जमा रखा है। लोकतान्त्रिक प्रक्रियाएँ व संस्थाएँ अब केवल कागज़ों पर अस्तित्वमान हैं। पूँजीवादी लोकतन्त्र का बस लिफ़ाफ़ा बचा रह गया है, मशमूलात को फ़ासीवाद चबा रहा है। योगी सरकार की निगाह में 2027 की शुरुआत में ही होने वाले उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव भी हैं। उसे उत्तर प्रदेश की जनता को यह दिखाने की फ़िक्र है कि नोएडा मसले में उत्तर प्रदेश सरकार सही थी और यह बात न्यायपालिका में भी साबित हो गयी है! लेकिन इलाहाबाद हाई कोर्ट के जस्टिस श्रीधरन व जस्टिस सचदेव द्वारा आकृति चौधरी पर से एन.एस.ए. हटाये जाने, उग्र सरकार व पुलिस को फटकार लगाये जाने और ज्ञानेश कुमार-पुत्री डी.एम. मेधा रूपम पर जुर्माना लगाये जाने से योगी सरकार की इस उम्मीद को भारी झटका लगा था क्योंकि पूरे देश का वैकल्पिक मीडिया इस फ़ैसले को

भारी कवरेज दे रहा था। यही वजह थी कि योगी सरकार आनन-फ़ानन में सर्वोच्च न्यायालय दो-दो याचिकाओं को लेकर पहुँची, फ़ौरन उसके लिए उपयुक्त बेंच का प्रबन्ध किया गया और आनन-फ़ानन में ही जस्टिस श्रीधरन की पीठ के फ़ैसले पर अन्तरिम रोक लगा दी गयी। लेकिन जिस तरीके से योगी सरकार और मोदी सरकार ने यह पूरा प्रपंच किया, वह भी देश के सामने आ गया। अब उनकी पहले से भी ज़्यादा छी-छी थू-थू हो रही है।

एक बार फिर से उत्तर प्रदेश की जनता के सामने और भी स्पष्टता से यह तथ्य सामने आ गया है कि योगी सरकार, मोदी सरकार और भाजपा पार्टी जैसी मज़दूर-विरोधी, मेहनतकश-विरोधी, स्त्री-विरोधी और जन-विरोधी और कोई भी पार्टी नहीं है। ऐसे में, उत्तर प्रदेश के सभी चेतनासम्पन्न मज़दूरों-मेहनतकशों को यह प्रण लेना चाहिए कि उनके समूचे वर्ग के साथ किये जा रहे इस अन्याय को वे भूलेंगे नहीं : फ़रवरी

2027 में होने वाले उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों के दौरान वे याद रखेंगे कि पिछले दस वर्षों में योगी सरकार ने प्रदेश के मज़दूरों, मेहनतकशों, सरकारी कर्मचारियों, आशाकर्मियों, आँगनवाड़ीकर्मियों, शिक्षा मित्रों आदि के साथ क्या सुलूक किया है। वे याद रखेंगे कि प्रदेश के दलितों, स्त्रियों और मुसलमान आबादी के साथ योगी सरकार ने क्या सुलूक किया है। सब याद रखा जायेगा। योगी सरकार और मोदी सरकार वोट-चोरी के ज़रिये जनादेश की चोरी कर चुनाव जीतने की उम्मीद कर सकते हैं। विशेष सघन पुनरीक्षण (एसआईआर) और ईवीएम का खेल इसी के लिए किया जा रहा है। इस समूचे घपले की परतें हर दिन के साथ देश की जनता के सामने खुलती जा रही हैं। इस घपले के ज़रिये ही भाजपा महत्वपूर्ण चुनावों की चोरी कर रही है। अन्यथा, मज़दूर इनके खिलाफ़ सड़कों पर हैं, आम ग़रीब किसान इनके खिलाफ़ सड़कों पर

हैं, छात्र-युवा इनके विरुद्ध सड़कों पर हैं, स्त्री-विरोधी अपराधों से त्रस्त स्त्रियाँ इनके खिलाफ़ सड़कों पर हैं, सोशल मीडिया पर मौजूद आम जनता का 95 प्रतिशत इनके विरुद्ध है, तो इन्हें वोट दे कौन रहा है? जवाब आप जानते हैं। इसलिए एक ओर एसआईआर को रद्द करने और बैलेट पेपर से चुनाव कराने का संघर्ष लड़ना होगा, वहीं याद रखना होगा कि आने वाले विधानसभा चुनावों में उत्तर प्रदेश में घोर मज़दूर-विरोधी, मेहनतकश-विरोधी व जन-विरोधी भारतीय जनता पार्टी और योगी आदित्यनाथ का पूर्ण बहिष्कार करना है।



119वें जन्मदिवस (28 सितम्बर) के मौके पर शहीद-ए-आज़म भगतसिंह की संस्मृतियाँ

भगतसिंह जब भी कानपुर आता तो अन्य पुस्तकों के साथ नौजवान भारत सभा का कुछ न कुछ साहित्य अपने साथ अवश्य लाता था; राधामोहन गोकुलजी और सत्यभक्त के सम्पर्क ने कानपुर के हम सभी साथियों में समाजवाद की ओर रुझान पैदा कर दिया था। शचीन्द्रनाथ सान्याल के माध्यम से श्री राधामोहन गोकुलजी और सत्यभक्त से भगतसिंह का सम्पर्क काकोरी काण्ड से पहले ही स्थापित हो चुका था और यह चारों समाजवाद तथा कम्युनिज़म पर काफ़ी विचार-विनिमय कर चुके थे। स्वर्गीय श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के नेतृत्व में हम लोगों ने कानपुर मज़दूर सभा में भी दिलचस्पी लेनी आरम्भ कर दी थी। आगे चलकर भगतसिंह ने हमारे उस रुझान को बल दिया और समाजवाद का अध्ययन तथा उस पर बहस आदि करने की प्रेरणा प्रदान की।

उनका कहना था कि अंग्रेज़ी दासता के विरुद्ध संघर्ष तो हमारे युद्ध का पहला मोर्चा है। अन्तिम लड़ाई तो हमें शोषण के विरुद्ध ही लड़नी पड़ेगी। चाहे वह शोषण मनुष्य द्वारा मनुष्य का हो या एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का हो। यह लड़ाई जनता के सहयोग के बग़ैर नहीं लड़ी जा सकती। इसलिए हमें हर सम्भव उपायों से जनता के अधिक से अधिक निकट पहुँचने का प्रयास करते रहना चाहिए। नौजवान भारत सभा की स्थापना, मज़दूर सभा में काम, पत्र-पत्रिकाओं में लेख-मालाएँ, मैजिक लैटर्न का प्रयोग, पर्चे और पैम्पलेट आदि इसी प्रयास के अंग थे। भगतसिंह से पहले प्रचार तथा जनसम्पर्क की दिशा में इतना बड़ा तथा संगठित क्रदम क्रान्तिकारियों ने नहीं उठाया था। यहाँ तक

कि पकड़े जाने के बाद अदालत तक को उसने मुख्यतया अपने विचारों के प्रचार के साधन के रूप में ही इस्तेमाल किया। वह अच्छा योद्धा ही नहीं अच्छा प्रचारक भी था।

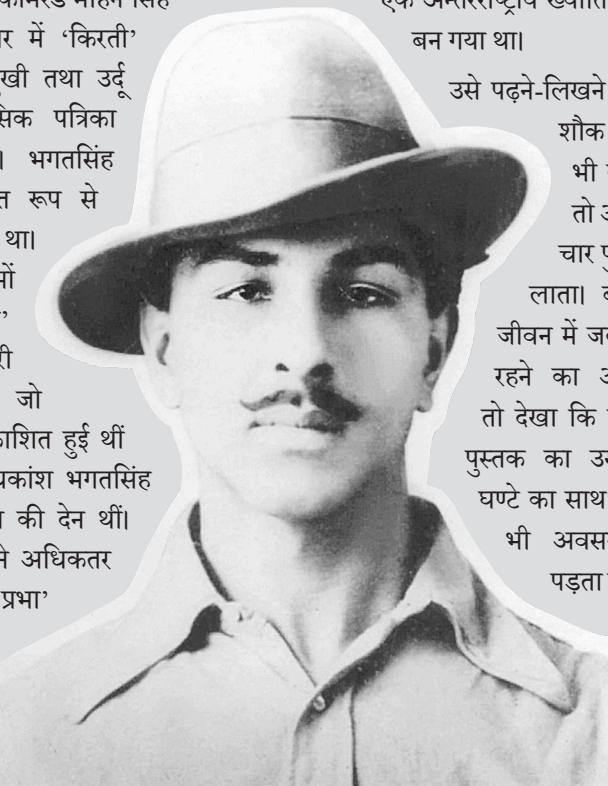
प्रचार के दो मुख्य साधन हैं, वाणी तथा लेखनी। भगतसिंह का दोनों पर समान अधिकार था। आमने-सामने की बातचीत में कुशल होने के साथ ही वह अच्छा वक्ता भी था। नौजवानों तथा विद्यार्थियों के बीच मैजिक लैटर्न पर उसके भाषण तो विशेष रूप से लोकप्रिय थे।

और कलम का धनी तो वह था ही। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेज़ी पर उसका समान अधिकार था। उन दिनों कॉमरेड मोहन सिंह जोश अमृतसर में 'किरती' नाम से गुरुमुखी तथा उर्दू में एक मासिक पत्रिका निकालते थे। भगतसिंह उनमें नियमित रूप से लिखता था। विभिन्न नामों से 'किरती' में क्रान्तिकारी शहीदों की जो जीवनियाँ प्रकाशित हुई थीं उनमें से अधिकांश भगतसिंह की ही क़लम की देन थीं। हिन्दी में उसने अधिकतर 'प्रताप' तथा 'प्रभा' (कानपुर), 'महारथी' (दिल्ली) और

'चाँद' (इलाहाबाद) में ही लिखा।

अंग्रेज़ी में लिखे हुए उसके लेख, अदालती वक्तव्य, पत्र, पर्चे आदि उसकी सशक्त शैली के प्रमाण हैं। नौजवान भारत सभा के घोषणा-पत्र का अंग्रेज़ी मसविदा भगवती चरण ने भगतसिंह के साथ मिलकर 1928 में तैयार किया था। भाषा, शैली तथा देश के उस समय के राजनीतिक स्तर को देखते हुए विचारों की परिपक्वता की दृष्टि से उस घोषणा-पत्र का आज भी एक ऐतिहासिक महत्व है। असेम्बली में बम फेंकने के बाद पकड़े जाने पर अदालत में उसने जो बयान दिया था वह तो उसी समय एक अन्तरराष्ट्रीय ख्याति का दस्तावेज़ बन गया था।

उसे पढ़ने-लिखने का भी बेहद शौक था। वह जब भी कानपुर आता तो अपने साथ दो-चार पुस्तकें अवश्य लाता। बाद में फ़रार जीवन में जब उसके साथ रहने का अवसर मिला तो देखा कि पिस्तौल और पुस्तक का उसका चौबीस घण्टे का साथ था। मुझे एक भी अवसर याद नहीं पड़ता जब मैंने उसके पास कोई न कोई पुस्तक न देखी हो।



1923-1924 में भगतसिंह के पिता उसका विवाह करने पर तुले गये थे। पिता की ज़िद से बचने के लिए वह भागकर कानपुर चला आया। कुछ दिन दिल्ली भी रहा। यहाँ उसने बड़ी मुसीबतों में दिन बिताये। दिल्ली, कानपुर से जब वह लाहौर वापस गया तो उसकी पगड़ी का स्थान एक छोटे अँगोछे ने ले लिया था। उसकी कमीज़ उसके शरीर का साथ छोड़ गयी थी और अब उसका बन्द गले का खदर का कोट कमीज़ का काम देख रहा था। कोट की आस्तीनें फट जाने पर उसने पायजामे की टाँग आस्तीन की जगह जोड़ ली थीं और पायजामे का स्थान उसकी चादर ने ले लिया था जिसे वह लुंगी की तरह इस्तेमाल करने लगा था। लेकिन इस हालत में भी उसके कोट की जेब में कोई न कोई पुस्तक अवश्य रहती थी।

भगतसिंह को सौन्दर्य, संगीत तथा कला से भी बेहद प्यार था। आगरा केन्द्र पर जब कभी पंजाब से सुखदेव आ जाता तो दोनों एक दूसरे में ऐसे खो जाते मानो और कोई हो ही नहीं। उस समय पंजाब कांग्रेस की गतिविधि, उसके नेताओं की आपसी पैतरेबाज़ियाँ, नौजवान भारत सभा का काम, बुद्धिजीवियों का मानसिक चढ़ाव-उतार, क्रान्तिकारी आन्दोलन की समस्याएँ, मज़दूरों के संघर्ष आदि विषयों से लेकर किसने क्या पढ़ा है, पठित पुस्तकों के लेखकों की शैली और उनके विचार, नयी पिकचर्स, अभिनेताओं की ऐक्टिंग आदि तक सभी बातों पर बहस होती। (भगतसिंह के साथी शिव वर्मा द्वारा क्रान्तिकारी शहीदों के संस्मरणात्मक रेखाचित्र 'संस्मृतियों' से साभार)

नोएडा मज़दूर आन्दोलन के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने आकृति चौधरी पर लगे एनएसए को किया रद्द!

(पेज 1 से आगे)

सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त तर्क के मुताबिक ऐसे तमाम मामलों में कभी किसी अधिकारी को ज़िम्मेदार ठहराया ही नहीं जा सकेगा और ऐसे मनगढ़न्त और झूठे मामलों में बेगुनाह लोगों को फँसाने वाले अधिकारियों की जवाबदेही भी नहीं तय की जा सकेगी। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले पर कई वकीलों, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, पत्रकारों आदि ने गम्भीर सवाल उठाते हुए कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि देश का सर्वोच्च न्यायालय न्याय और क़ानून के उसूलों की रक्षा से अधिक कुछ विशेष अधिकारियों और सत्ता में बैठे लोगों के हितों की रक्षा में लगा है। ऐसा इसलिए क्योंकि न सिर्फ़ उच्चतम न्यायालय का तर्क इस मामले में बेहद विवादास्पद था बल्कि इससे भी बढ़कर कोर्ट की पूरी सुनवाई की प्रक्रिया ही अपारदर्शी और सन्देहयुक्त थी।

क़ानूनी मसले पर रिपोर्टिंग करने वाले कुछ बेहद महत्वपूर्ण न्यूज़ चैनल्स, ऑनलाइन पोर्टल्स व सर्वोच्च न्यायालय के कई वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने न्यायालय द्वारा सुनवाई की प्रक्रिया के दौरान सुनवाई में ऑनलाइन शामिल लोगों के लिए माइक बन्द करवाने को कोर्ट की आपत्तिजनक कार्रवाई बताया है। माइक बन्द करने का आदेश जस्टिस सतीश चन्द्र शर्मा ने दिया था। लोगों ने पूछा है कि जस्टिस शर्मा द्वारा वीडियो-कॉन्फ़्रेंसिंग के दौरान ऑडियो म्यूट करने के निर्देश के पीछे क्या कारण हो सकते हैं? न्यायालय की सार्वजनिक सुनवाई की प्रक्रिया से वकीलों और पत्रकारों को क्यों वंचित किया जा रहा है? कोर्ट में पहले ही पत्रकारों को भौतिक रूप से मौजूद रहने की अनुमति नहीं थी और बाद में वीडियो-कॉन्फ़्रेंसिंग का ऑडियो भी बन्द कर देना कोर्ट की मंशा पर गहरे सवाल उठाता है।

इसके साथ ही कोर्ट में नोएडा मज़दूर आन्दोलन से जुड़े इस मामले की लिस्टिंग भी सर्वोच्च न्यायालय में बेहद असामान्य तरीक़े से हुई। 'लाइव लॉ' पोर्टल के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में मेधा रूपम और यूपी सरकार द्वारा इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले को रद्द करने की माँग करते हुए लगायी गयी स्पेशल लीव पेटिशन की लिस्टिंग भी अदालत की कार्रवाई पर सन्देह पैदा करती है। रिपोर्ट के मुताबिक नोएडा प्रदर्शन से जुड़े मसले व अन्य Habeas Corpus और Preventive Detention के मामले सुप्रीम कोर्ट में जस्टिस नागरत्ना की वरिष्ठ पीठ के समक्ष सूचीबद्ध होते हैं, तो ऐसे में ज़िलाधिकारी और उत्तर प्रदेश सरकार की याचिकाएँ जस्टिस शर्मा की निचली पीठ के सामने कैसे

सूचीबद्ध हुईं? 13 जुलाई 2026 के सुप्रीम कोर्ट रोस्टर के अनुसार, हेबियस कॉर्पस और प्रीवेण्टिव डिटेन्शन (कैटेगरी 2201-2202) से जुड़े मामले वरिष्ठता क्रम में शुरुआती चार पीठों को सौंपे गये हैं। इनमें चीफ़ जस्टिस सूर्यकान्त, जस्टिस विक्रम नाथ, जस्टिस बी.वी. नागरत्ना और जस्टिस एमएम सुन्दरेश की अध्यक्षता वाली न्यायिक पीठें शामिल हैं। रिपोर्ट के अनुसार, नोएडा मज़दूर प्रदर्शन से जुड़े अन्य मामलों की सुनवाई पहले से जस्टिस बी.वी. नागरत्ना की अध्यक्षता वाली पीठ कर रही है और वे सभी मामले सुप्रीम कोर्ट में पहले से लम्बित हैं। आदित्य आनन्द और रूपेश रॉय के साथ हिरासत में हुई पुलिसिया बर्बरता का मामला हो या फिर योगेश मीणा की गिरफ़्तारी को चुनौती देते हुए लगायी गयी याचिका हो, ये सभी याचिकाएँ जस्टिस नागरत्ना की पीठ के समक्ष अभी लम्बित है। इन याचिकाओं को भी कैटेगरी 2202 के तहत दिखाया गया है परन्तु यह कैटेगरी जस्टिस शर्मा के नियमित रोस्टर में मौजूद ही नहीं है। आमतौर पर एक ही मामले से जुड़ी याचिकाओं की न्यायिक पीठ में कोई तब्दीली नहीं होती है और इसमें किसी भी तरह के बदलाव की प्रशासनिक शक्ति चीफ़ जस्टिस के पास होती है। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय में मुख्य चुनाव आयुक्त की सुपुत्री मेधा रूपम की सज़ा को माफ़ करने के लिये सुनवाई में हुई यह हेराफेरी फैसले की निष्पक्षता को ही कटघरे में ला खड़ा करती है।

इसके अलावा 'लाइव लॉ' ने एक अन्य रिपोर्ट में मेधा रूपम, जो केचुआ आयुक्त ज्ञानेश कुमार की पुत्री है, व चुनाव आयोग से सम्बन्धित मामलों की सुनवाई के लिए जस्टिस सतीश चन्द्र शर्मा के सम्बन्ध में न्यायिक औचित्य व उपयुक्तता पर भी सवाल खड़े किये। जस्टिस शर्मा के पुत्र चुनाव आयोग के स्टैंडिंग काउंसिल (वकील) हैं! क्या इस बात को और अधिक समझने की आवश्यकता है? क़ायदे से तो जस्टिस शर्मा को खुद इन सुनवाईयों से अपने आप को अलग कर लेना चाहिए था क्योंकि स्पष्ट तौर पर यहाँ हितों का टकराव है। लेकिन वह ऐसा नहीं करते हैं। उल्टे, सुनवाई के दौरान माइक बन्द करवा देते हैं, केचुआ पुत्री पर लगा ज़ुर्माना माफ़ कर देते है, अदालती कार्यवाई के दौरान केचुआ पुत्री के समर्थन में टिप्पणियाँ करते हैं! इस पूरे मामले पर 'लॉयर्स असोशिएशन फॉर कोन्स्टिट्यूशन' नामक अधिवक्ता मंच ने एक बयान जारी करते हुए अदालत के हालिया फैसले को वापस लिए जाने की माँग की और पूरी प्रक्रिया की कड़ी निन्दा की।

मौजूदा फ़ासीवादी दौर में पूँजीवादी न्यायतंत्र दिन-ब-दिन बेपर्द होता जा रहा है। भाजपा सरकार ने पिछले 12 सालों में न्यायपालिका से लेकर तमाम पूँजीवादी लोकतान्त्रिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं पर आन्तरिक क़ब्जे के ज़रिये उन्हें अन्दर से खोखला करने का काम किया है, उनकी बचे-खुचे जनवादी अन्तर्वस्तु को भी धीरे-धीरे एक लम्बी प्रक्रिया में कुतरने और क्षीण करने का काम किया है। मज़दूरों-मेहनतकशों और आम जनता के पक्ष में आपवादिक तौर पर अदालत के फैसले आते हैं। एनएसए को रद्द करने और ज़िम्मेदार अधिकारियों पर ज़ुर्माना लगाने का इलाहाबाद उच्च न्यायालय का फैसला उन्हीं चन्द आपवादिक फैसलों में से एक था।

मालूम हो कि इस साल के अप्रैल माह में नोएडा के मज़दूर वेतन बढ़ोत्तरी और बेहतर कार्यस्थितियों को लेकर स्वतःस्फूर्त तरीक़े से आन्दोलनरत थे। जिसके बाद राज्य सरकार ने मज़दूरों के आन्दोलन पर तथाकथित हिंसा भड़काने के आरोप में दमनात्मक कार्रवाई करते हुए सैकड़ों मज़दूरों व सामाजिक कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया। यूपी पुलिस ने गिरफ़्तार लोगों पर हिंसा भड़काने के साथ-साथ भड़काऊ भाषण देने और "साज़िश रचने" का भी आरोप लगाया। 11 अलग-अलग एफ़आईआर के अलावा दो कार्यकर्ताओं पर एनएसए जैसा दमनकारी आपवादिक क़ानून भी थोप दिया गया। इसमें से ही एक, आकृति चौधरी के एनएसए मामले की सुनवाई करते हुए बीते 3 सितम्बर को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने अपना फैसला सुनाया। 'स्टेट ऑफ़ उत्तर प्रदेश वर्सेज़ आकृति चौधरी' मामले की सुनवाई करते हुए उच्च न्यायालय के जस्टिस श्रीधरन और अचल सचदेव की पीठ ने न सिर्फ़ एनएसए को रद्द किया बल्कि यूपी पुलिस की पूरी कहानी को मनगढ़न्त और हास्यास्पद बताया।

अदालत के इस फैसले ने उत्तर प्रदेश में योगीराज की हक़ीक़त को एक बार फिर सबके सामने ला खड़ा किया है। एक बार फिर यह साबित हो गया कि मालिकों की सेवा में नतमस्तक़ फ़ासीवादी योगी सरकार मज़दूरों के आन्दोलन को कुचलने के लिये किसी भी हद तक जा सकती है। सत्यम वर्मा और आकृति चौधरी, जो मज़दूरों की न्यायसंगत व संवैधानिक माँगों का समर्थन कर रहे थे (जिन माँगों को उत्तर प्रदेश पुलिस ने अनुचित ठहराया था!), उन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये ख़तरा बता दिया गया और उनकी गिरफ़्तारी के तक्ररीबन एक महीने बाद जब कि वे जेल में ही थे और अपनी ज़मानत के लिये निचली अदालतों में याचिका लगा रहे थे, उनके ऊपर एनएसए लगा

दिया गया। निचली अदालतों में सुनवाई के दौरान यूपी पुलिस ने गिरफ़्तार कार्यकर्ताओं की तथाकथित हिंसा में भागीदारी को लेकर कोई पुख्ता सबूत जमा नहीं किये थे और इस बात की पूरी सम्भावना थी कि उन्हें ज़मानत पर रिहा कर दिया जाता। मगर इस सम्भावना को ख़त्म करने के लिये पुलिस ने अपनी मनगढ़न्त कहानी को आधार बनाते हुए एनएसए का इस्तेमाल किया।

सत्यम वर्मा जो एक प्रसिद्ध जन बुद्धिजीवी, लेखक, वरिष्ठ पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता व 'जनचेतना' प्रगतिशील पुस्तक संस्थान से जुड़े रहे हैं और आकृति चौधरी 'दिशा छात्र संगठन', 'प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स लीग' से जुड़ी दिल्ली विश्वविद्यालय की होनहार छात्रा और कलाकार है, उन्हें प्रिवेण्टिव डिटेन्शन के तहत 12 मई को हिरासत में लिया गया। आकृति चौधरी और सत्यम वर्मा के ऊपर लगाये गये फ़र्जी एनएसए और इस मामले में गिरफ़्तार तमाम सामाजिक कार्यकर्ताओं को फँसाने के लिए यूपी पुलिस ने जो तीन-तिकड़म किये थे उसकी असलियत एक-एक करके लोगों के सामने खुल रही थी। ग़ैर-क़ानूनी गिरफ़्तारी से लेकर झूठे आरोप और फिर उसे साबित करने के लिए पुलिस हिरासत के दौरान हिंसा करने से लेकर सबूत गढ़ने के कई साक्ष्य जनता के सामने आ चुके थे। इसमें अब शायद ही किसी को कोई शक़ बचा हो कि नोएडा मज़दूर आन्दोलन में यूपी पुलिस ने 'एजेंट प्रोवोकेटियर' की भूमिका निभायी है और खुद साज़िश रची है। असली नोएडा कन्सिपेरेसी केस यह है!

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने भी नोएडा मज़दूर आन्दोलन में उत्तरप्रदेश पुलिस और कार्यपालिका के जनविरोधी रवैये पर टीका की। जस्टिस अतुल श्रीधरन और जस्टिस अचल सचदेव की न्यायिक पीठ ने अपने फैसले में कहा कि "आकृति चौधरी के ऊपर एनएसए जैसा गम्भीर क़ानून लगाने के पीछे पुलिस ने कोई पर्याप्त आधार पेश नहीं किया। पुलिस को बार-बार मौक़ा दिया गया मगर आकृति चौधरी के हिंसा में संलग्न होने या उनसे होने वाली 'राष्ट्रीय सुरक्षा को ख़तरे' के मद्देनज़र कोई भी ठोस साक्ष्य अदालत के सामने नहीं लाया गया। इसके उलट राज्य द्वारा जो वीडियो और फ़ोटो पेश किये गये उनमें ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह साबित होता हो कि याचिकाकर्ता किसी भी हिंसक गतिविधि में शामिल थी। उन वीडियो और तस्वीरों में यह दिख रहा है कि मज़दूर अपने संवैधानिक अधिकारों का उपयोग करते हुए प्रदर्शन कर रहे हैं। मज़दूरी में बढ़ोत्तरी,

8 घण्टे काम और बेहतर कार्यस्थितियों की माँग बेहद बुनियादी और जायज़ माँग है।"

इसके साथ ही न्यायाधीशों की बेंच ने यह स्पष्ट किया कि पुलिस की पूरी चार्जशीट आरोपों से भरी हुई है और कई विरोधाभासी तथ्य इस ओर इशारा करते हैं कि एनएसए के तहत की गयी गिरफ़्तारी याचिकाकर्ता को उदाहरण बनाकर दण्डित करने की मंशा से की गयी है ताकि आगे कोई मज़दूरों के समर्थन में आवाज़ उठाने से पहले डरे। पुलिस द्वारा बतायी गयी गिरफ़्तारी की तारीख़ और समय में भी विसंगतियाँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गिरफ़्तारी क़ानूनी प्रक्रिया का पालन करते हुए नहीं की गयी और याचिकाकर्ता को गिरफ़्तार करने के पश्चात उसे नोटिस जारी किया गया जो पुलिसिया कार्रवाई के ग़ैर-क़ानूनी चरित्र को दिखलाता है।

जस्टिस अतुल श्रीधरन व जस्टिस अचल सचदेव ने अपने फैसले में यह भी कहा कि "एनएसए के तहत हिरासत में रखना एक अपवाद है। किसी व्यक्ति को बेल मिलने की सूरत में, राज्य द्वारा उसे मनगढ़न्त कहानी के आधार पर क़ैद में रखना कोई विकल्प नहीं हो सकता। ज़िला अधिकारी द्वारा बताये गये हिरासत के आधार दोहरावपूर्ण, काल्पनिक और केवल दावों पर आधारित हैं जिसे साबित करने के लिए साक्ष्यों का कोई हवाला नहीं दिया गया है। हिरासत का आधार आरोपों और राय से परे होना चाहिए। ज़िलाधिकारी के दिमाग़ में उठने वाली उनकी आत्मगत राय के पीछे सन्दर्भ और ठोस प्रमाण पेश किये जाने चाहिए अन्यथा यह मनमानापन होगा। ऐसे असाधारण अधिकारों का प्रयोग, जो संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी व्यक्ति के मूलभूत अधिकारों का सीधा उल्लंघन करता है, वह अनुमानों, पूर्वाग्रहों, अटकलों और राय के आधार पर हल्के में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है।"

अदालत ने अपने फैसले में एक बार फिर यह स्पष्ट किया कि "पुलिस को यह समझना चाहिए कि उनकी निष्ठा राजनीतिक पार्टियों के प्रति नहीं, बल्कि संविधान के प्रति है और उनकी ईमानदारी तथा निष्पक्षता उन लोगों के प्रति है, जिनकी वे सेवा करते हैं। उन्हें यह भूलना नहीं चाहिए कि वे जनता के सेवक हैं और जनता की सेवा करना उनका कार्य है...." साथ ही, अदालत ने इस मामले में एनएसए के आदेश को पारित करने वाली गौतमबुद्ध नगर की ज़िलाधिकारी यानी मेधा रूपम के आचरण को निन्दनीय बताया और एनएसए के मनमाने इस्तेमाल के लिए 5 लाख रुपए का ज़ुर्माना/मुआवज़ा भी याचिकाकर्ता को देने का आदेश दिया। (पेज 11 पर जारी)

नोएडा मज़दूर आन्दोलन के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने आकृति चौधरी पर लगे एनएसए को किया रद्द!

(पेज 10 से आगे)

हालाँकि, उन्होंने यह जुर्माना इस मामले में सम्बन्धित तमाम अधिकारियों यानी पुलिस थाने के एसएचओ से लेकर ज़िलाधिकारी तक के वेतन से वसूलने की बात कही। इलाहाबाद उच्च न्यायालय का यह फैसला उत्तर प्रदेश में जारी पुलिसिया दमनतंत्र की सच्चाई को सामने लाता है। यह कोई अकेला फैसला नहीं है, इससे पहले भी आम नागरिकों के साथ यूपी पुलिस की बर्बरता पर कई सख्त आदेश न्यायालयों के द्वारा जारी किये गये हैं।

राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून जैसे दमनकारी क़ानून के चरित्र और इसके इस्तेमाल को लेकर पहले भी सवाल खड़े होते रहे हैं और भाजपा सरकार के राज में तो यह नंगे तौर पर दमन के औज़ार के रूप में सामने आया है। नोएडा मज़दूर आन्दोलन के मामले में आकृति चौधरी पर लगाये गये एनएसए को रद्द करते हुए दिया गया इलाहाबाद उच्च न्यायालय का फैसला एक बार फिर यह साबित करता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून का एकमात्र लक्ष्य इस मसले में भी यही था कि गिरफ़्तार कार्यकर्ताओं की रिहाई को अधिकतम सम्भव समय के लिए मुश्किल बना दिया जाये और सुनवाई की प्रक्रिया को ही सज़ा में तब्दील कर दिया जाये। सत्यम वर्मा के

ऊपर लगे रासुका को चुनौती देते हुए एक याचिका इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लम्बित है।

कई मीडिया रपटों और अतीत में की गयी न्यायाधीशों की टिप्पणी को देखें तो इस बात में कोई दोराय नहीं है कि एनएसए जैसे काले क़ानून को अलग-अलग सरकारें और आज फ़ासीवादी मोदी सरकार और उसकी पुलिस लोगों को डराने, चुप कराने और फ़र्ज़ी तरीक़े से जेल भेजने के लिए कर रही है। आर्टिकल 14 नामक वेब पोर्टल की एक रिपोर्ट के अनुसार उत्तरप्रदेश सरकार एनएसए के इस्तेमाल में सबसे आगे है। 2017 से लेकर अबतक अधिकांशतः इसका इस्तेमाल प्रदर्शनकारियों के खिलाफ़ हुआ है या किसी भी रूप में सरकार की आलोचना करने वालों के खिलाफ़। दिसम्बर 2019 में सीएए और एनआरसी के काले क़ानून के विरुद्ध हुए विरोध प्रदर्शनों के ख़त्म होने के तुरन्त बाद मऊ ज़िले में स्थानीय मुस्लिम युवाओं पर एनएसए (राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून) लगाया गया, 2020 में कोविड लॉकडाउन के दौरान बरेली में समाजवादी पार्टी के एक कार्यकर्ता सहित कई लोगों पर एनएसए के तहत मामला दर्ज किया गया (जबकि दोनों ही मसलों में कथित हिंसा या पुलिसिया आरोप को साबित करने के लिये कोई

वीडियो या फ़ोटो सबूत नहीं था), 2022 में कानपुर में तत्कालीन बीजेपी प्रवक्ता नूपुर शर्मा की मुस्लिम-विरोधी टिप्पणी के बाद हुए विरोध प्रदर्शनों को दबाने के लिए भी इस दमनकारी क़ानून का इस्तेमाल किया गया और एक मुस्लिम एक्टिविस्ट हयात ज़फ़र हाशमी को एनएसए के तहत गिरफ़्तार कर लिया गया। डाक्टर कफ़ील ख़ान पर भी 'भड़काऊ भाषण' देने का आरोप लगाकर उन्हें रासुका के तहत नौ महीने जेल में रखा गया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं ने बताया कि, "पिछले कुछ सालों में यह देखा जा रहा है कि उत्तर प्रदेश सरकार की नीतियों के खिलाफ़ बोलने वालों पर या तो रासुका लगा दिया जाता है या फिर एनकाउण्टर जैसे न्यायेतर तरीक़ों का इस्तेमाल आम बनता जा रहा है।"

'आर्टिकल 14' ने अपने शोध में यह भी पाया कि 2010 से 2019 के बीच इलाहाबाद हाईकोर्ट में सुने गये 101 रासुका मामलों की जाँच में आमतौर पर, हिरासत में लिए गये लोग—चाहे वे निर्दोष हों या नहीं—अपनी याचिकाओं के अन्तिम निपटारे से पहले राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (एनएसए) 1980 के तहत अपनी अधिकतम हिरासत अवधि का लगभग 76% हिस्सा जेल में बिताते

थे। लगभग 79 प्रतिशत मामलों में एनएसए को न्यायालय द्वारा ख़ारिज किया गया है, यह आँकड़ा इस क़ानून के इस्तेमाल के पीछे की मंशा को दिखलाता है।

दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहलाने वाला भारत उन चन्देक देशों में से है जहाँ का संविधान 'प्रिवेण्टिव डिटेंशन' के क़ानून की इजाज़त देता है, जिसके तहत केवल सरकार या पुलिस प्रशासन के अधिकारियों के 'मनोगत तौर पर सन्तुष्ट' होने के आधार पर किसी को भी बिना किसी सबूत या ट्रायल के अधिकतम 12 माह तक जेल में रखा जा सकता है। 1980 में इस क़ानून के बनने के पहले 1977 तक ऐसा ही एक दूसरा क़ानून 'मीसा' 1971 से प्रभाव में था। उसके पहले 1950 में एक प्रिवेण्टिव डिटेंशन क़ानून आया था। 1977 से 1980 तक के तीन वर्ष ही आज़ाद भारतीय गणराज्य में ऐसा दौर हैं, जबकि ऐसा 'प्रिवेण्टिव डिटेंशन' का कोई क़ानून मौजूद नहीं था। इसके अलावा, आज़ाद भारत के पूरे इतिहास में आम इंसान की आज़ादी का मखौल बनाने वाला कोई न कोई ऐसा क़ानून मौजूद रहा है।

एनएसए दरअसल अंग्रेज़ों के कुख्यात 'रोलैट एक्ट' का ही एक नया संस्करण है। 'रोलैट एक्ट' वही दमनकारी क़ानून

था जिसके विरोध में जलियाँवाला बाग़ का जुटान हुआ था, जिस पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसाकर अंग्रेज़ों ने हज़ारों भारतीय लोगों का क़त्ले-आम किया था। आज का राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून भी रोलैट एक्ट के दमनकारी प्रावधानों के सिद्धान्तों पर ही चलता है। इसके अनुसार, अगर किसी पुलिस अधिकारी, डीएम या सरकार को व्यक्तिगत तौर पर यह "आत्मगत सन्तोष" है कि कोई व्यक्ति राष्ट्रीय सुरक्षा या सार्वजनिक क़ानून-व्यवस्था के लिए ख़तरा हो सकता है, तो उसे बिना किसी सबूत या मुक़दमे के जेल में रखा जा सकता है। यह ऐसा क़ानून नहीं है जिसके तहत आपको किसी किये गये अपराध के आधार पर हिरासत में रखा जाये, बल्कि एक ऐसा क़ानून है जो बिना कोई अपराध किये भी आपको जेल पहुँचा सकता है क्योंकि पुलिस या सरकार को यह "लगता है" कि आप अपराध कर सकते हैं! भाजपा सरकार ने इस क़ानून को राजनीतिक विरोध और प्रतिरोध को कुचलने के एक महत्वपूर्ण हथियार के तौर पर बखूबी इस्तेमाल किया है। खास तौर पर उत्तर प्रदेश की योगी सरकार ने एनएसए का धड़ल्ले से प्रयोग असहमति की आवाज़ों को दबाने व जनपक्षधर आवाज़ों को ख़त्म करने के मक़सद से किया है।

चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति के कमाण्डर-इन-चीफ़ लू शुन के जन्मदिवस (25 सितम्बर) के मौक़े पर

दुनिया में अतिरिक्त उत्पादन के कारण आर्थिक संकट पैदा हो गया है। हालाँकि तीन करोड़ से भी ज़्यादा मज़दूर भूखे मर रहे हैं पर खाद्यान्न का अतिरिक्त भण्डार एक "वस्तुगत सच्चाई" है। ऐसा न होता तो अमेरीका हमें गेहूँ उधार नहीं दे पाता और हमें "ज़बरदस्त फसल की आपदा" नहीं झेलनी पड़ती।

लेकिन ज्ञान भी अतिरिक्त हो सकता है जिसके चलते और भी गम्भीर संकट पैदा हो जाता है। कहा जा रहा है कि आज गाँवों में शिक्षा का जितना ही विस्तार होगा, देहातों की कंगाली ही उतनी तेज़ी से होगी। निस्सन्देह यह एक ज़बरदस्त मानसिक फसल की आपदा है। कपास बेहद सस्ती हो गयी है इसलिए अमेरीकी अपने यहाँ कपास के खेतों को ही ख़त्म कर रहे हैं। इसी तरह चीन को भी ज्ञान का ख़ात्मा कर देना चाहिए। यह पश्चिम से सीखा गया एक बेहतरीन नुस्खा है।

पश्चिमी लोग बड़े क़ाबिल हैं। पाँच-छह साल पहले जर्मनी वालों ने शिकायत की कि उनके यहाँ कॉलेजों में छात्र-छात्राओं की तादाद बहुत ज़्यादा हो गयी है और कई राजनीतिज्ञों

तथा शिक्षाशास्त्रियों ने युवाओं को यह सलाह देने के लिए ख़ास शोर-शराबा किया कि उन्हें विश्वविद्यालयों में दाखिला नहीं लेना चाहिए। आज जर्मनी में ये न केवल यह सलाह दे रहे हैं, बल्कि ज्ञान को समाप्त करने की प्रक्रिया भी शुरू कर चुके हैं। वे चुन-चुन कर किताबें जला रहे हैं, लेखकों को अपनी पाण्डुलिपियाँ निगल जाने का हुक्म दे रहे हैं और विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के समूहों को लेबर कैम्पों में बन्द कर रहे हैं— इसे "बेरोज़गारी की समस्या के समाधान" के रूप में जाना जाता है।

क्या आज चीन से भी यह शिकायत नहीं की जा रही है कि क़ानून और कला के विषयों में बहुत अधिक विद्यार्थी हो गये हैं? यही नहीं, हमारे यहाँ तो हाई स्कूल के विद्यार्थी भी बहुत ज़्यादा हैं। इसलिए एक "सख्त" परीक्षा प्रणाली को लोहे के झाड़ू की तरह चलाये जाने की ज़रूरत है सड़ाक, सड़ाक, सड़ाक, सभी फालतू युवा बुद्धिजीवियों को बुहार कर "जनसाधारण" के ढेर में गिरा देना चाहिए।

अतिरिक्त ज्ञान से संकट कैसे हो

सकता है? क्या यह एक तथ्य नहीं है कि क़रीब नब्बे प्रतिशत चीनी जनता निरक्षर है? हाँ! लेकिन अतिरिक्त ज्ञान भी एक "वस्तुगत सच्चाई" है और इससे पैदा होने वाला संकट भी। जब ज़रूरत से ज़्यादा आपके पास ज्ञान हो जाता तो आप या तो बहुत ज़्यादा कल्पनाशील हो जाते हैं या बहुत ज़्यादा नरमदिला। अगर आप बहुत ज़्यादा कल्पनाशील होंगे तो आप

अतिरिक्त ज्ञान

- लू-शुन

बहुत ज़्यादा सोचेंगे। अगर आप बहुत ज़्यादा नरमदिल होंगे तो आप निर्मम नहीं हो पायेंगे या तो आप अपना सन्तुलन खो बैठेंगे या फिर दूसरों के सन्तुलन के साथ छेड़छाड़ करेंगे, और इसी तरह आपदा आती है। इसीलिए ज्ञान को ख़त्म कर दिया जाना चाहिए। लेकिन सिर्फ़ ज्ञान को ख़त्म करना ही काफ़ी नहीं है। उचित व्यावहारिक शिक्षा भी ज़रूरी है। पहली ज़रूरत है एक भाग्यवादी दर्शन - लोगों को ख़ुद की नियति के हाथों में छोड़ देना चाहिए और अगर उनका भाग्य दुःख

भरा हो तो भी उन्हें सन्तुष्ट रहना चाहिए। दूसरी ज़रूरत है मतलबपरस्ती में महारत। हवा का रुख पहचानो और आधुनिक हथियारों की ताक़त के बारे में जानो। कम से कम इन व्यावहारिक पाठ्यक्रमों को तुरन्त बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इन्हें बढ़ावा देने का तरीक़ा बड़ा सीधा-सादा है।

पुराने ज़माने में भाववाद का विरोध करने वाले एक दार्शनिक का कहना था कि अगर तुम्हें इसमें सन्देह है कि आटे के कटोरे का अस्तित्व है या नहीं, तो तुम इसे खा लो और देखो कि तुम सन्तुष्ट महसूस करते हो या नहीं।

इसलिए अगर आप लोगों को बिजली के बारे में समझाना चाहते हैं तो आप उन्हें बिजली का झटका देकर देख सकते हैं कि उन्हें चोट लगती है या नहीं। अगर आप उन्हें हवाई जहाज़ों या ऐसी ही चीज़ों के कारनामों से प्रभावित करना चाहते हैं तो आप उनके सिरों के ऊपर से हवाई जहाज़ उड़ा कर बम गिरा सकते हैं, यह देखने के लिए कि वे मरते हैं या नहीं.... इस तरह की व्यावहारिक शिक्षा हो तो अतिरिक्त ज्ञान की समस्या कभी होगी ही नहीं। आमीन।

रचनाकाल-1933



मोदी राज में जीडीपी वृद्धि के आँकड़ों में व्यापक हेराफेरी! यह महज़ आँकड़ों की बाज़ीगरी नहीं बल्कि खुली डकैती है!

● अमित

तुम्हारी फ़ाइलों में
गाँव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आँकड़े झूठे हैं
यह दावा किताबी है

— अदम गोण्डवी

पिछले दिनों प्रधानमंत्री मोदी ने अपनी विदेश यात्रा के दौरान ही यह घोषणा कर दी कि उनकी सरकार के "अथक प्रयास" और देश में बैठे कुछ "निराशावादी" लोगों के नकारात्मक रवैये के बावजूद देश विकास की छलांगें लगा रहा है और इस वित्त वर्ष यानी 2026-27 की पहली तिमाही में जीडीपी 7.8 प्रतिशत की ऊँचाई को छू रही है! लेकिन मजेदार बात यह रही कि इस जबरदस्त विकास के बावजूद मोदी जी ने जनता से अपील की कि वे विदेश न जायें, सोना न खरीदें और स्वदेशी अपनायें! किसी और मामले का तो नहीं पता लेकिन प्रधानमंत्री मोदी व फ़्रांसीसीवादी भाजपा सरकार ने झूठ और फ़रेब के मामले में अपने वैचारिक पूर्वजों हिटलर और गोएबल्स को भी पीछे छोड़ दिया है! आँकड़ों की बाज़ीगरी में तो इन्होंने और भी ऊँचे मुक़ाम हासिल किये हैं। फ़रेब का आलम यह है कि दुनिया की कोई भी संस्था भारत सरकार के आँकड़ों पर विश्वास नहीं कर रही है। यहाँ तक कि साम्राज्यवादी संस्था 'अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष' (आईएमएफ़) ने भारत सरकार के आँकड़े को 'सी ग्रेड' की रेटिंग दी है, जिसका मतलब यह हुआ कि भारत के आँकड़ें विश्वसनीय नहीं माने जा सकते।

बहरहाल मोदी सरकार के हवाई दावे एक तरफ़, अपने जीवन के वास्तविक हालात से हर किसी को मालूम है कि देश में आर्थिक तबाही मची हुई है, बेरोज़गारी अपने चरम पर है, हालिया नीति आयोग की ही रिपोर्ट के अनुसार, 15-29 वर्ष के 8.4 करोड़ युवा न तो रोज़गारशुदा हैं, न ही शिक्षा में हैं। पिछले 10-12 वर्षों में वास्तविक मज़दूरी में कोई वृद्धि नहीं हुई है। पिछले 10 वर्षों में करीब 94 हजार सरकारी स्कूल बन्द हुए हैं और लोग शिक्षा व्यवस्था की दहलीज़ से बाहर हुए हैं, और यही हाल स्वास्थ्य सेवाओं का भी है। यही आलम महँगाई का भी है जो कि विकराल रूप धारण कर चुकी है। लेकिन मोदी सरकार की फ़ाइलों में पूरे देश का रंग गुलाबी है और जनता लहालोट हो उठी है! बस, कुछ "दिमागी नक्सल" जनता को बरगलाने का काम करते रहते हैं!

आइये 'जीडीपी ग्रोथ' के इस फ़र्ज़ी व झूठे आँकड़े का पर्दाफ़ाश परत दर परत करते हैं।

प्रधानमंत्री मोदी की इस घोषणा के बाद कि देश का जीडीपी इस वित्त वर्ष की पहली तिमाही, यानी अप्रैल से जून

2026 में 7.8 प्रतिशत की दर से विकसित हुआ, मोदी सरकार के ही पूर्व वित्त सचिव सुभाष चन्द्र गर्ग ने इस पर गम्भीर सवाल खड़ा करते हुए बताया कि अंकित विकास दर 7.8 प्रतिशत नहीं बल्कि मात्र 2.6 प्रतिशत है। अगर मुद्रास्फीति को इसमें शामिल किया जाये तो वास्तविक विकास दर लगभग शून्य प्रतिशत के करीब होगी! उनका कहना था कि सरकार ने आँकड़ों की बाज़ीगरी करके पिछले वित्त वर्ष की पहली तिमाही के आँकड़ों में भारी संशोधन कर के उसे करीब 86 लाख करोड़ रुपये से घटा कर करीब 80 लाख करोड़ रुपये कर दिया है, और इससे अंकित विकास दर करीब 11 प्रतिशत और वास्तविक विकास दर करीब 7.8 प्रतिशत प्रतीत होती है। खैर, सुभाष चन्द्र गर्ग ने मोदी सरकार की 'जीडीपी ग्रोथ' सम्बन्धी आँकड़ों के गुब्बारे की तो आते ही हवा निकाल दी, हालाँकि असली सवाल अभी भी मोदी सरकार द्वारा

जीडीपी की गणना के लिए इस्तेमाल की जा रही पद्धति का है जिसपर कोई अर्थशास्त्रियों प्रश्नचिह्न खड़े किये हैं। इस पर हम थोड़ा और विस्तार से चर्चा करते हैं। लेकिन उससे पहले समझते हैं कि क्या जीडीपी वृद्धि का मतलब

आम मेहनतकश जनता की जीवन स्थिति में बेहतरी होती है?

जीडीपी यानी सकल घरेलू उत्पाद एक निश्चित अवधि में किसी भी देश के भीतर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य को दर्शाता है। जीडीपी यह नहीं बताता कि उत्पादित मूल्य समाज में किस प्रकार वितरित हो रहा है और इसकी वृद्धि से किसे लाभ मिल रहा है। हम जानते हैं कि यह समस्त मूल्य मज़दूर वर्ग अपनी मेहनत से पैदा करता है लेकिन इसका फ़ायदा उसे नहीं मिलता है। अगर जीडीपी की दर मोदी राज में कुलांचे भर रही है तो फिर क्यों देश की कुल सम्पत्ति का 40 प्रतिशत ऊपर के 1 प्रतिशत के पास है और नीचे की आधी आबादी के पास महज 3 प्रतिशत है? क्यों मज़दूर वर्ग की वास्तविक मज़दूरी में कोई वृद्धि नहीं हो रही है? ज़ाहिर सी बात है कि पूँजीवादी समाज में जीडीपी का कोई भी आँकड़ा समाज की प्रगति की वास्तविक तस्वीर नहीं पेश कर सकता है। सच तो यह है

कि इस ग़ैर-बराबरी वाली मुनाफ़े पर खड़ी व्यवस्था में सकल घरेलू उत्पाद का बड़ा हिस्सा जनता के हिस्से में नहीं बल्कि पूँजीपतियों की तिजोरियों में जा रहा है। साथ ही, जीडीपी आर्थिक प्रगति का इसलिए भी कोई सटीक सूचक नहीं है क्योंकि इसकी गणना में ऐसे कई घटक शामिल किये जाते हैं जो अनुत्पादक हैं, यानी जो समाज में नया मूल्य पैदा नहीं करते, भले ही वे पूँजीवाद के संचालन के लिए उपयोगी हो सकते हैं, मसलन वाणिज्यिक बिक्री, राज्य के प्रशासनिक कार्य आदि। इसके अलावा, भारतीय अर्थव्यवस्था पिछले लम्बे समय से मुनाफ़े की दर के संकट से बुरी तरह प्रभावित है। अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में रुपये की गिरावट भारतीय अर्थव्यवस्था की खराब स्थिति का एक और संकेतक है। बावजूद इसके, मोदी जी जीडीपी में वृद्धि के हवाई गोले छोड़ रहे हैं और हमें जश्न मनाने को कह रहे हैं!



देश की जीडीपी 7.8% की गति से बढ़ रही है, अगर तुम उसके साथ न चल पाओ तो यह तुम्हरी गलती है।

बहरहाल, इस वित्तीय वर्ष, यानी 2026-27, की पहली तिमाही (अप्रैल-जून) के जीडीपी वृद्धि के जो आँकड़े मोदी सरकार ने प्रस्तुत किये हैं वे भी इस वर्ष के वास्तविक आँकड़े नहीं हैं बल्कि पिछले वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही के आँकड़े के अनुसार इस वित्त वर्ष के अनुमानित आँकड़े हैं। और यह भी सिर्फ़ संगठित क्षेत्र के आँकड़े हैं। जबकि इस वर्ष ईरान-अमेरिका युद्ध की वजह से सप्लाई चेन बुरी तरह से बाधित रही, ऊर्जा आपूर्ति बुरी तरह से प्रभावित रही, उद्योग-व्यापार ठप्प पड़ा रहा, गैस सिलिण्डर से लेकर ज़रूरी ईंधन की भारी किल्लत थी, इनकी क्रिमों में बेइंतहा उछाल देखने को मिला और यही वजह थी कि नोएडा से लेकर गुडगाँव, मानेसर, सूत सहित देश के अलग-अलग हिस्सों में स्वतःस्फूर्त मज़दूर आन्दोलनों का उभार देखने को मिला जिसका अप्रत्याशित बर्बरतापूर्ण दमन विशेषकर उत्तर प्रदेश की योगी सरकार ने किया। ऐसे में यह कैसे सम्भव है कि

जीडीपी के विकास की ट्रेन 7.8 प्रतिशत की गति से दौड़ती रहे? ज़ाहिर सी बात है कि यह आँकड़ा वास्तविक सच्चाई को बिल्कुल भी प्रदर्शित नहीं करता!

देश की अर्थव्यवस्था में असंगठित क्षेत्र में करीब 94 प्रतिशत लोग काम करते हैं और जीडीपी में इस क्षेत्र का योगदान करीब 45 प्रतिशत है, वहीं संगठित क्षेत्र में करीब 6 प्रतिशत लोग काम करते हैं और इसका जीडीपी में करीब 55 प्रतिशत का हिस्सा है। यह बात जगज़ाहिर है कि पिछले 10 सालों में, यानी पहले नोटबन्दी, फिर जीएसटी, और फिर कोविड संकट ने असंगठित क्षेत्र को बुरी तरीक़े से तोड़ कर रख दिया है। वैसे भी आम तौर पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपनी गलाकाटू आन्तरिक प्रतिस्पर्धा के कारण और अधिक मशीनीकरण की ओर जाती है जिसके कारण श्रम प्रधान उद्योग पूँजी प्रधान से पिछड़ता ही जाता है। लेकिन

विशेष तौर पर पिछले 10 वर्षों की आर्थिक मन्दी ने तो इस क्षेत्र को और भी बुरे तरीक़े से प्रभावित किया है। जीडीपी की गणना में संगठित क्षेत्र के आँकड़े लिए जाते हैं और यह मान कर चला जाता है कि असंगठित क्षेत्र भी इसी गति से विकास

कर रहा है। यानी संगठित क्षेत्र के आँकड़े को असंगठित क्षेत्र पर आरोपित कर दिया जाता है। लेकिन असंगठित क्षेत्र का संकट काफ़ी व्यापक है और वास्तव में यह क्षेत्र संकुचित हो रहा है। जैसा कि अर्थशास्त्री अरुण कुमार बताते हैं, इस वजह से देश की वास्तविक अर्थव्यवस्था पिछले दशक में 2-2.5 प्रतिशत की दर से ही आगे बढ़ रही है।

मोदी राज में जीडीपी के आँकड़ों में विसंगतियों (डिस्क्रेपेंसीज़) का भारी इज़ाफ़ा हुआ है। जीडीपी को दो पक्षों से मापा जा सकता है। एक उत्पादन खाते के पक्ष से और दूसरा व्यय खाते के पक्ष से। आदर्श स्थिति में ये दोनों बराबर होने चाहिए। इसका सीधा कारण यह है कि प्रत्येक वस्तु जो उत्पादित होती है वह बिक्री के ज़रिये ही अपने मूल्य को वास्तविकृत कर पाती है, यानी सरल शब्दों में कहें तो प्रत्येक बिक्री अपने आप में एक ख़रीद भी होती है और यह एक दूसरे के बराबर होती है। लेकिन व्यवहार में ये बराबर नहीं होते हैं और

इनके बीच विसंगतियाँ मौजूद होती हैं, जिसके कई कारण हैं जिनमें से दोनों के बीच समय का अन्तर, क्रीमत में उतार-चढ़ाव आदि कारण शामिल हैं। लेकिन ये विसंगतियाँ अगर बहुत ज़्यादा होंगी तो आँकड़े की विश्वसनीयता कटघरे में खड़ी हो जायेगी। जैसा कि अर्थशास्त्री अरुण ने दिखलाया है कि वित्तीय वर्ष 2023-24 में पहली तिमाही में उत्पादन के आँकड़े के अनुसार 7.8 प्रतिशत विकास दर थी जबकि व्यय के आँकड़े के अनुसार यह केवल 1.4 प्रतिशत रही। ज़ाहिर सी बात है यह विसंगति काफ़ी ज़्यादा है और यह सरकार द्वारा पेश जीडीपी वृद्धि के आँकड़ों से बिल्कुल मेल नहीं खाती है।

जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं जीडीपी की गणना में केवल वास्तविक उत्पादन को शामिल नहीं किया जाता है। जीडीपी की गणना में उत्पादक क्षेत्र के अलावा ग़ैर-उत्पादक क्षेत्र की भी गणना की जाती है। पूँजीवाद के अन्तर्गत मूल्य सिर्फ़ उत्पादक श्रम ही पैदा करता है और उत्पादक क्षेत्र में उत्पादित मूल्य ही अनुत्पादक क्षेत्र में हस्तान्तरित होता है। इसलिए इस हिसाब से देखें तो जीडीपी की गणना में एक क्रिस्म की "डबल काउंटिंग" होती है। इसलिए सीधे तौर पर जीडीपी की दर उत्पादक क्षेत्र में मुनाफ़े की दर को प्रदर्शित नहीं करती है। हालाँकि फिर भी अगर जीडीपी की दर 7-8 फ़ीसदी है तो इसका मतलब पूँजीवादी मानकों से ही सही इतना तो ज़रूर है कि अर्थव्यवस्था ठीक-ठाक पटरी पर चल रही है, निवेश की दर स्वस्थ है, अगर निवेश मौजूद है तो रोज़गार की स्थिति भी अच्छी है, रोज़गार की स्थिति अगर बेहतर है तो मज़दूरी और घरेलू उपभोग में भी तेज़ी होगी। लेकिन आज इन मानकों पर अगर नज़र दौड़ायें तो देखेंगे कि स्थिति बेहद संगीन है।

उत्पादक पूँजी के निवेश का संकट बढ़ता ही जा रहा है। कॉर्पोरेट टैक्स में छूट व तमाम लोन माफ़ी के बावजूद मैन्यूफैक्चरिंग में निवेश पिछले 5 वर्षों में अपने न्यूनतम स्तर पर है। ट्रैक्टर उत्पादन, डीज़ल की खपत आदि में कमी देखने को मिली है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में भारी कमी होना इस चीज़ को पुष्ट करता है। शुद्ध प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 2024-25 में अपने शिखर (2020 में 44 बिलियन डॉलर) का सिर्फ़ 1 प्रतिशत से भी कम यानी केवल 344 मिलियन डॉलर तक रह गया है! यानी अगर अर्थव्यवस्था इतनी तेज़ गति से सरपट दौड़ लगा रही है तो निवेश में इतनी भारी गिरावट क्यों है?

मुनाफ़े के दर के संकट से जूझ रही पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में निवेश का संकट लाज़िमी है, क्योंकि पूँजीपति का मक़सद अधिक से अधिक मुनाफ़ा (पेज 13 पर जारी)

बिहार के जमुई में 15 वर्षीय युवती के साथ हुए यौन उत्पीड़न के खिलाफ चुप्पी तोड़ो! गुण्डों द्वारा की जा रही हिंसा और "नैतिक पुलिसिंग" के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाओ! बिहार मुख्यमंत्री सम्राट चौधरी इस्तीफ़ा दो!

● स्त्री मुक्ति लीग का बयान

बिहार के जमुई में 19 सितम्बर को एक 15 वर्षीय लड़की और उसका दोस्त मोटरसाइकिल पर जा रहे थे, तभी 6-7 लोगों ने उनका पीछा किया, जिनमें से कुछ ने अपने चेहरे भगवा कपड़े से ढके हुए थे। इन लोगों द्वारा लड़की के साथ यौन उत्पीड़न किया गया और उसे अभद्र तरीके से छुआ गया, जबकि लड़के को हमलावरों ने बुरी तरह पीटा। अपराधियों ने बेशर्मी से इस घटना का वीडियो भी बनाया और उसे सोशल मीडिया पर अपलोड कर दिया, जहाँ यह काफ़ी वायरल हो गया। इस घटना की क्रूरता ने वीडियो देखने वाले हर व्यक्ति को स्तब्ध कर दिया है।

इस भयावह घटना ने एक बार फिर हमारे देश में स्त्रियों की सुरक्षा को लेकर गम्भीर सवाल खड़े कर दिये हैं। इन गुण्डों को लोगों पर हमला करने और उन्हें प्रताड़ित करने का अधिकार किसने दिया? "हमारी संस्कृति" की रक्षा के नाम पर ऐसे गुण्डों को सड़कों पर खुलेआम घूमने की छूट देने के लिए कौन ज़िम्मेदार है? 2026 में भी शाम के 7 बजे भी महिलाएँ सड़कों पर सुरक्षित क्यों नहीं हैं? महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा और हमलों में इतनी वृद्धि क्यों हो रही है? इसके लिए कौन जवाबदेह होगा?

जमुई की घटना को अलग-थलग करके नहीं देखना चाहिए। लम्बे समय से "नैतिक पुलिसिंग" का एक सुनियोजित सिलसिला चल रहा है, जहाँ नन्दन यादव (इस घटना में शामिल में हमलावर अपराधी) जैसे लोग "संस्कृति की रक्षा" के नाम पर लोगों को धमकाने और उन पर हमला करने का ज़िम्मा खुद पर ले लेते हैं। वर्षों से बजरंग दल जैसे समूह, जो आरएसएस-भाजपा से सम्बद्ध एक फ़ासीवादी संगठन है, इस तरह की "नैतिक पुलिसिंग" में शामिल रहे हैं। उदाहरण के लिए, वैलेन्टाइन डे पर बजरंग दल के गुण्डे सार्वजनिक स्थानों पर गश्त लगाते हैं और भारतीय संस्कृति की रक्षा के नाम पर युवा जोड़ों को धमकाते हैं। अधिकतर मामलों में,

इस तरह की कार्रवाई में धमकियाँ और हिंसा शामिल होती है। ऐसी घटनाओं के वीडियो और अन्य सबूतों के बावजूद, इन गुण्डों पर कोई सख्त कार्रवाई नहीं की गयी है। इन संगठनों के खिलाफ़ अक्सर कार्रवाई में कमी दिखायी देती रही है। उदाहरण के तौर पर, राजकोट में फ़रवरी 2026 में वैलेन्टाइन डे के मौके पर

गश्त के दौरान पुलिस ने विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल के गुण्डों का साथ दिया था। हाल ही में पुणे के सिंहगढ़ क़िले में समस्त हिन्दू बन्धव सेना के आठ सदस्यों के खिलाफ़ "हिन्दू संस्कृति" की रक्षा के नाम पर एक युवती के शॉर्ट्स पहनने पर आपत्ति जताने के आरोप में मामला दर्ज किया गया। समूह पर एक अन्य दम्पति के साथ दुर्व्यवहार करने और नैतिक पुलिसिंग करने का प्रयास करने का भी आरोप है।

बिहार के जमुई से भाजपा विधायक श्रेयसी सिंह ने हालिया घटना के बाद कहा कि "नैतिक पुलिसिंग को शालीन और सम्मानजनक तरीके से अंजाम दिया जा सकता है"। साथ ही, यौन हिंसा से जुड़े मामलों में आरोपी या दोषी ठहराये गये पुरुषों को राजनीतिक समर्थन मिलता रहता है। उदाहरण के लिए, भाजपा नेता बृजभूषण शरण सिंह ने उन्नाव बलात्कार मामले में दोषी ठहराये गये कुलदीप सिंह सेंगर का सार्वजनिक रूप से समर्थन किया था। सिंह स्वयं 2026 में महिला पहलवानों से जुड़े यौन उत्पीड़न मामले में बरी हो गये थे, जिसके बाद उनके समर्थकों ने उनका भव्य स्वागत किया था। स्वामी चिन्मयानन्द, प्रज्ज्वल

रेवन्ना, आसाराम बापू, राम रहीम जैसे लोगों को भी राजनीतिक समर्थन मिलता रहता है।

उन्हें अपनी गन्दी फ़ासीवादी साम्प्रदायिक राजनीति को अंजाम देने का मौका मिले!



इस तरह यौन उत्पीड़न के कई आरोपी और दोषी भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सत्ताधारी पार्टी से जुड़े हुए हैं। वास्तव में भाजपा ही वह पार्टी है जिसके सबसे अधिक सांसद और विधायक स्त्री-विरोधी अत्याचारों के आरोपी हैं। हाल ही में, भाजपा विधायक रामेश्वर शर्मा ने गरबा में मुसलमानों की भागीदारी के बारे में कहा कि मुस्लिम पुरुषों को अपनी बहनों और बेटियों को लाना चाहिए और "हमारे लड़के" तैयार हैं। उन्होंने मुस्लिम महिलाओं को सीधे तौर पर बलात्कार की धमकी दी। एक फ़ासीवादी संगठन के नेताओं के लिए ऐसी बातों से कोई समस्या नहीं होती क्योंकि उनके विचारक सावरकर ने खुद लिखा है कि "बलात्कार को राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।" ये वही लोग हैं जिन्होंने कभी "बहुत हुआ नारी पर वार, अबकी बार मोदी सरकार" और "बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ" जैसे नारे लगाये थे और उनका छात्र संगठन एबीवीपी कहता है, "नारी के सम्मान में, एबीवीपी मैदान में"। हकीकत तो यह है कि ये फ़ासीवादी केवल तभी किसी महिला की "परवाह" करते हैं जब अपराधी मुस्लिम हो या जहाँ भी

एनसीआरबी के आँकड़ों के अनुसार, 2024 में पूरे भारत में महिलाओं के खिलाफ़ अपराध के 4,41,534 मामले दर्ज किये गये। आये दिन महिलाओं को उनके पहनावे, आने-जाने के स्थान, घर

लौटने के समय, बात करने के तरीके और यहाँ तक कि सार्वजनिक स्थानों पर उनके व्यवहार पर भी प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ता है। महिलाओं को देर से घर न आने, पुरुषों से बात न करने, जोर से न हँसने, "खुले" कपड़े न पहनने और हिंसा से बचने के लिए लगातार अपने व्यवहार में बदलाव करने की सलाह दी जाती है। हिंसा करने वालों से सवाल करने के बजाय, समाज अक्सर महिलाओं पर "सुरक्षित रहने" का बोझ डाल देता है।

इससे हम फिर से उसी मूलभूत प्रश्न पर लौट आते हैं: महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा की जड़ में क्या है? और समाज हिंसा करने वालों को जवाबदेह ठहराने के बजाय महिलाओं को नियंत्रित करना क्यों जारी रखता है? जवाब है पितृसत्ता। यह कोई घिसा-पिटा जुमला नहीं, बल्कि एक जीती-जागती और भयावह सच्चाई है, जो महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों की जड़ में है। राहुल गांधी पितृसत्ता से लड़ने और "महिला सशक्तिकरण" को बढ़ावा देने की बातें तो करते हैं, लेकिन कांग्रेस के नेताओं द्वारा दिये गये महिला-विरोधी बयानों को पूरी तरह से नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। इस तथ्य को अनदेखा कर देते हैं कि उनकी अपनी पार्टी में भी ऐसे

सांसद और विधायक हैं जिन पर महिलाओं के खिलाफ़ अत्याचार के आरोप हैं। राहुल गांधी या पूँजीपति वर्ग का कोई भी प्रतिनिधि कभी भी पितृसत्ता के खिलाफ़ सही मायने में लड़ाई नहीं लड़ सकता।

हमारे लिए, पितृसत्ता से लड़ना उस पूँजीवादी व्यवस्था से लड़ने से अलग नहीं है जो महिलाओं को बेगार खटाकर मुनाफ़ा कमाती है। पूँजीवाद के अन्तर्गत मुनाफ़े के लालच में मानवीय सम्बन्धों और यहाँ तक कि इंसानी जीवन को भी एक ख़रीदने-बेचने वाली वस्तु में तब्दील कर दिया जाता है। इस व्यवस्था में महिलाओं का श्रम, शरीर और जीवन भी एक "वस्तु" से अधिक कुछ नहीं होता है।

अब यह स्पष्ट हो चुका है कि सत्ताधारी दल को बदलने मात्र से महिलाओं को मुक्ति नहीं मिल सकती। स्त्री मुक्ति के संघर्ष को पितृसत्ता और उस पूँजीवादी व्यवस्था, दोनों को चुनौती देनी होगी जो महिलाओं के दमन को बढ़ावा देती है और उससे मुनाफ़ा कमाती है। हम सबको एकजुट होकर पूँजीवादी पितृसत्ता के विरुद्ध लड़ना होगा और पीड़ितों के लिए न्याय तथा दोषियों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की माँग करनी होगी।

स्त्री मुक्ति लीग की माँगें:

1. दोषियों के खिलाफ़ कड़ी कार्रवाई और गुण्डों द्वारा पीटे गये लड़के और लड़की को शीघ्र न्याय मिले।

2. बिहार के मुख्यमंत्री सम्राट चौधरी घटना की ज़िम्मेदारी लें और इस्तीफ़ा दें।

पूँजीवादी पितृसत्ता का नाश हो!

पूँजीवाद हो बर्बाद! फ़ासीवाद मुर्दाबाद!



मोदी राज में जीडीपी वृद्धि के आँकड़ों में व्यापक हेराफेरी! यह महज़ आँकड़ों की बाज़ीगरी नहीं बल्कि खुली डकैती है!

(पेज 12 से आगे)

कमाना होता है, अगर उत्पादक अर्थव्यवस्था में स्वस्थ मुनाफ़े की दर मौजूद नहीं होगी तो इसका सीधा असर निवेश पर पड़ेगा। निवेश के संकट के साथ बेरोज़गारी ने विकराल रूप धारण किया हुआ है। एक आँकड़े के अनुसार, 25 वर्ष की आयु तक के शिक्षित युवाओं में बेरोज़गारी दर 40 प्रतिशत

तक है जबकि 25-29 वर्ष की आयु वर्ग के बीच 20 प्रतिशत है। अपने ज़िन्दगी के अनुभव से भी हम आसानी से समझ सकते हैं कि बेरोज़गारी का संकट भयावह है। लेकिन फिर वही सवाल उठता है कि अगर जीडीपी में इतनी तेज़ गति से वृद्धि हो रही है तो फिर इतनी बेरोज़गारी क्यों है?

बेरोज़गारी के संकट के साथ मज़दूरी के

संकट ने भी विकराल रूप धारण किया हुआ है। एक तरफ़ बेरोज़गारों की फ़ौज खड़ी है और दूसरी तरफ़ रोज़गारशुदा लोग बढ़ते काम के घण्टों के दबाव को झेल रहे हैं और साथ ही उनकी वास्तविक मज़दूरी में या तो कोई वृद्धि नहीं हुई है या फिर मामूली-सी बढ़ोत्तरी हुई है। वहीं किसी-किसी क्षेत्र में तो मज़दूरी में कमी भी देखी गयी है। ज्यों

द्रेज़ और अरिन्दम दास ने एक अध्ययन में यह दिखलाया है कि 2015-16 से 2022-23 के बीच खेतिहर मज़दूरी में मात्र 0.1 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है और व्यापार को छोड़ अन्य सेवा क्षेत्रों में तो यह आँकड़ा -0.8 प्रतिशत रहा है, यानी वास्तविक मज़दूरी में कमी आयी है! ज़ाहिर सी बात है कि अर्थव्यवस्था में तेज़ी के मोदी सरकार के दावों में कोई

दम नहीं है, बल्कि असल बात तो यह है कि अर्थव्यवस्था मन्दी के दौर से गुज़र रही है। मोदी सरकार का मक़सद है कि ऐसे हवाई दावों से जनता को गुमराह किया जाये ताकि लोगों को ऐसा प्रतीत हो कि सब चंगा सी! हालाँकि हमारी ज़िन्दगी की असलियत ऐसे सभी हवाई दावों की कलई खोल देती है।

बर्बरता के नित नये प्रतिमान गढ़ने में लगी पश्चिम बंगाल की भाजपा सरकार! कोलकाता में मेहनतकशों की एक बस्ती का पानी किया बन्द! मजबूरी में हुगली नदी का गन्दा पानी इस्तेमाल करके बीमार पड़ रहे लोग!!

● शिशिर

कहते हैं कि इतिहास से सीखने की त्रुटिनिवारक गतिविधि सिर्फ़ क्रान्तिकारी ताकतें ही नहीं, फ़ासीवादी भी करते हैं। हमारे देश के हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादियों ने 20वीं सदी के दौरान हिटलर और मुसोलिनी के अंजाम से सीखा है और इसीलिए 21वीं सदी के फ़ासीवाद की ख़ासियत है कि वह बुर्जुआ जनवाद को अन्दर से निरन्तर खोखला करते हुए उसके खोल को बचाये रखता है या वह यातना शिविर बनाकर एक साथ बड़ी तादाद में अल्पसंख्यकों का क्रत्लेआम करने जैसी कार्रवाई नहीं करता। लेकिन पूँजीपति वर्ग की सेवा के लिए तत्पर फ़ासीवादी, अल्पसंख्यकों पर और सामान्य तौर पर समूची ग़रीब आबादी पर ज़ुल्म ढाने का कोई न कोई तरीक़ा ईजाद करते ही रहते हैं। आम मेहनतकशों को कभी नोटबन्दी की मार झेलनी पड़ती है, तो कभी तालाबन्दी की। लगातार बढ़ती हुई तेल और गैस की क्रीमतों का बोझ भी सबसे ज़्यादा उन्हीं के सर आता है। एसआईआर जैसी कवायदों के ज़रिये लोगों को दर-दर भटकने के लिए मजबूर किया जाता है। पश्चिम बंगाल में भी चुनाव जीतने के बाद से ही फ़ासीवादियों के आतंकी कारनामे रुकने का नाम ही नहीं ले रहे हैं।

यह बात भी सच है कि ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस के दुःशासन और आतंक के चलते फ़ासीवादी अपने साम्प्रदायिक प्रचार को जनता के एक हिस्से तक ले जा पाने और उसे वोट में परिवर्तित करने में कामयाब रहे थे। कई लोगों ने भाजपा को “विकास” के नाम पर वोट दिया था। लेकिन अभी से कई लोगों ने भाजपा को वोट देने के अपने फ़ैसले पर पुनर्विचार शुरू कर दिया है, क्योंकि संघी-भाजपाई फ़ासीवादियों की बर्बरता अब सारी हदें पार कर रही है! पहले वे सड़क किनारे सामान बेचने वालों के पीछे पड़े और उनकी दुकानें बुलडोज़र से गिराकर उनकी रोज़ी-रोटी छीन ली! अब उन्हीं ज्योतिनगर नाम की मेहनतकशों की बस्ती में रहने वाले लोगों का पीने और नहाने का पानी भी बन्द कर दिया है! उत्तरी कोलकाता के काशीपुर इलाक़े में मौजूद इस बस्ती के निवासियों के लिए 29 जुलाई, 2026 से पानी की आपूर्ति बन्द कर दी गयी है। कोई भी अधिकारी बताने को तैयार नहीं है कि ऐसा क्यों और कैसे हुआ! क्या इसलिए कि राज्य सरकार ज्योतिनगर के निवासियों पर साम्प्रदायिक हमला करके उन्हें वहाँ से भगाना चाहती है और उस ज़मीन को किसी बड़े पूँजीपति परजीवी को बेचना चाहती है? आम लोगों में तो यही बात

फैली है कि सुवेन्दु अधिकारी की सरकार मिलेनियम पार्क से लेकर सर्वमंगला घाट तक की, क़रीब छः किमी लम्बी ज़मीन किसी पूँजीपति के हाथों बेचना चाहती है। इसके लिए उन्होंने सर्वमंगला घाट के छोर से शुरू होने वाली बस्ती ज्योतिनगर से शुरुआत की है जहाँ की कुल आबादी की बहुतायत मुसलमानों की है और इसलिए अधिकारी की भाजपा सरकार ने अंग्रेज़ों के नक्शेक़दम पर चलते हुए धर्म के नाम पर जनता को “बाँटो और राज करो” का हथकण्डा अपनाया है।

बस्ती के निवासियों ने राज्य प्रशासन से भी सम्पर्क करने की कोशिश की है, लेकिन उन्हें अधिकारियों से बार-बार निराशा ही हाथ लगी है। समस्या की शुरुआत में, वे सम्बन्धित नगरपालिका अधिकारी के पास एक अर्जी लेकर गये थे और उन्हें चार-पाँच दिनों के भीतर आपूर्ति बहाल करने का भरोसा भी दिया गया था, लेकिन कुछ नहीं किया गया। इलाक़े की लगभग 10 महिलाओं ने काशीपुर-बेलगाछिया विधानसभा सीट के स्थानीय भाजपा विधायक रितेश तिवारी से भी मुलाकात की, जिन्होंने उनकी गुहार को यह कहकर खारिज़ कर दिया कि न तो आपूर्ति बन्द करने के पीछे उनका हाथ था और न ही वे इसे बहाल करने में कोई मदद कर सकते हैं। इस समय हमें उनके उस घटिया साम्प्रदायिक भाषण को याद करना चाहिए जो उन्होंने अपनी विधानसभा सीट के मुस्लिम निवासियों को धमकाते हुए दिया था। उन्होंने कहा था कि वे मुसलमानों के लिए कोई काम नहीं करेंगे क्योंकि उन्होंने उन्हें वोट नहीं दिया था। उन्हीं यहाँ तक धमकी दी थी कि भले ही वे अपने नेता मोदी के "सबका साथ, सबका विकास" के दृष्टिकोण से सहमत हैं, लेकिन वे "सबका हिसाब" भी करेंगे, जैसा कि मोदी ने खुद 2026 के पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनावों के प्रचार के दौरान कहा था।

जब लोग अस्थायी व्यवस्था के तौर पर टैंकर से पानी की आपूर्ति के लिए नगरपालिका से सम्पर्क करते हैं, तो ज्योतिनगर बस्ती का नाम सुनते ही नगरपालिका तुरन्त मना कर देती है। नगरपालिका ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया है कि पानी की आपूर्ति में लगातार रुकावट की वजह क्या है। यह बस्ती चिटपुर स्टैण्ड बैंक रोड पर लगभग 400 मीटर लम्बाई में फैली हुई है। इस छोटे से हिस्से के दोनों तरफ़ के इलाक़ों में पानी की आपूर्ति सामान्य रूप से चल रही है। इस ख़ास हिस्से में मुख्य रूप से मुस्लिम समुदाय के लोग रहते हैं। हालाँकि कोई किसी

भी धर्म का हो, पूरी बस्ती में ज़्यादातर मेहनत-मज़दूरी करने वाले लोग ही रहते हैं, जैसे कि रिक़शा चलाने वाले या दिहाड़ी मज़दूर आदि। बस्ती के दक्षिण की तरफ़ कई छोटी मैन्युफ़ैक्चरिंग इकाइयाँ और गोदाम हैं और दूसरी तरफ़ गन शेल रोड के किनारे शुरुआत में हथियारों का एक बड़ा सरकारी कारख़ाना, एक प्रिंटिंग प्रेस कारख़ाना, कुछ अपार्टमेन्ट कॉम्प्लेक्स, मेहनतकशों की कुछ बस्तियाँ, और रोज़मर्रा के सामान बेचने वाली कुछ छोटी-मोटी दुकानें हैं। ज्योतिनगर बस्ती के दोनों तरफ़ के निवासियों के बीच संघ परिवार का साम्प्रदायिक प्रचार फैलाया गया है कि ज्योतिनगर के निवासी "बांग्लादेशी" हैं।

अभी की स्थिति यह है कि आसपास के इलाक़ों में छोटे से मध्यम आकार के व्यवसायों - जैसे कबाड़ी के अलग-अलग सामान की रीसाइक्लिंग करने वाली इकाइयाँ, सीमेन्ट गोदाम वगैरह - में काम करने वाले दिहाड़ी मज़दूरों का एक बड़ा हिस्सा ज्योतिनगर बस्ती से ही आता है। एक तरफ़, छोटी से मध्यम स्तर की मैन्युफ़ैक्चरिंग इकाइयों पर बड़ी कम्पनियों के बढ़ते असर के कारण लगातार बर्बाद होने का ख़तरा मण्डरा रहा है और दूसरी तरफ़, उद्यमी मध्यम वर्ग का यह हिस्सा अपनी विशिष्ट सामाजिक स्थिति के कारण मेहनतकश लोगों के प्रति नफ़रत रखता है। यह नफ़रत मज़दूरी को कम रखने और श्रम शक्ति का ज़्यादा से ज़्यादा शोषण करने की उनकी दीर्घकालिक ज़रूरत से पैदा होती है, जिसके लिए वे ग़ैर-आर्थिक दमनकारी तरीक़ों का भी इस्तेमाल करते हैं। निम्न-बुर्जुआ वर्ग, चाहे वह वेतनभोगी पेशेवर हिस्से से आता हो या उद्यमी हिस्से से, का निचला हिस्सा जहाँ हमेशा इस डर और चिन्ता में रहता है कि कहीं वह भी दिहाड़ी मज़दूर न बन जाये और अपनी इस आर्थिक अनिश्चितता के चलते क्रान्तिकारी प्रचार के अभाव में फ़ासीवादी प्रतिक्रिया का हिस्सा बनता है, वहीं उसका ऊपरी वेतनभोगी हिस्सा बेशी मूल्य के कुल अधिग्रहण के एक हिस्से की मलाई चाटता है, यानी अपनी श्रम शक्ति के मूल्य से ज़्यादा कमाता है और इस तरह शासक वर्गों के दैनिक कामकाज के कर्ताधर्ता के तौर पर उनके साथ स्वाभाविक क़रीबी बनने की वजह से वह फ़ासीवादी प्रचार के असर में सापेक्षतः जल्दी आता है और ऊपरी उद्यमी हिस्सा बड़ा पूँजीपति बनने की चाहत पाले हुए, “कारोबार करने में आसानी” के नारे के तहत ख़ासकर संकटकाल में फ़ासीवादियों का समर्थन आधार

बनता है। टुटपुंजिया वर्ग से आने वाले ये तबके, अपनी वर्ग स्थिति के कारण, फ़ासीवादी प्रचार के असर में आकर, अपना गुस्सा असली वजह—यानी पूँजीवाद और उसके बड़े खिलाड़ियों—पर निकालने के बजाय मज़दूरों और मेहनतकश लोगों पर निकालते हैं। संघ परिवार का तंत्र अपने अनवरत साम्प्रदायिक प्रचार के ज़रिये ज्योतिनगर के मेहनतकश लोगों के प्रति नफ़रत फैलाता रहा है, क्योंकि "बांग्लादेशी" वाली बात यूँ ही नहीं फैली है। मध्यम वर्ग के ऐसे ही एक छोटे उद्यमी ने बस इतना माना कि पानी की आपूर्ति रोकना “बांग्लादेशियों” के लिए भी कुछ ज़्यादा ही सख़्त क़दम है” और इसके पहले वह ऐलान कर चुका था कि "बांग्लादेशियों" को हटाना ही चाहिए, भले ही इसके कारण उनका अपना कारोबार ही क्यों न बन्द हो जाये, जो पूरी तरह से ज्योतिनगर के मज़दूरों के भरोसे चलता है। अपने कारोबार के बन्द होने को लेकर उसका यह रवैया उसकी “बेपरवाही” से ज़्यादा उसके जल्द ही बर्बाद हो जाने की प्रबल आशंका की स्वीकार्यता और उससे उपजी निराशा को दर्शाता है; और यह बर्बादी इसलिए होने वाली है क्योंकि पूँजीवाद में एक आम नियम के तहत बड़ी पूँजी अक्सर छोटी पूँजी को निगल जाती है।

शुरू में बस्ती की बिजली आपूर्ति काटने की भी कोशिशें हुईं लेकिन कुछ दिनों बाद इसे बहाल कर दिया गया—ज्योतिनगर के निवासियों की फ़िक्र करते हुए नहीं, बल्कि इसलिए क्योंकि बस्ती की सड़क से गुज़रने वाले ट्रकों और सामान ढोने वाली गाड़ियों (जो पास के छोटे मैन्युफ़ैक्चरों और सप्लायरों का सामान ढोती हैं) को शाम के समय दुर्घटना का डर था। क्या हमें यह पूछने की ज़रूरत है कि नगरनिगम के अधिकारियों को आपूर्ति काटने और ज्योतिनगर के निवासियों के साथ बिल्कुल भी सहयोग न करने के आदेश देने के पीछे कौन से लोग हैं? लोग यह शक़ क्यों न करें कि इसमें स्थानीय बीजेपी विधायक रितेश तिवारी शामिल हैं, जिन्होंने पहले ही अपने क्षेत्र के मुस्लिम निवासियों को धमकी दी है कि वे "सबका हिसाब" लेंगे? पश्चिम बंगाल राज्य में किस दल की सरकार है? 600 से 700 परिवारों की पानी की आपूर्ति काटना और इतने लम्बे समय तक उसे बहाल न करना, नगरनिगम, स्थानीय पुलिस, राज्य प्रशासन और सत्ताधारी दल के बीच की मिलीभगत को दिखाता है। सिर्फ़ संघ परिवार जैसा फ़ासीवादी संगठन ही इतनी निर्ममता के साथ ऐसा धिनौना

काम कर सकता है। सुवेन्दु अधिकारी सरकार का यह फ़र्ज़ है कि वह राज्य के नागरिकों को पानी, बिजली जैसी बुनियादी सुविधाएँ मुहैया कराये, बिना इस बात की परवाह किये कि किसने किसे वोट दिया। इसलिए पश्चिम बंगाल राज्य सरकार ही इस धिनौने और अमानवीय काम के लिए पूरी तरह से ज़िम्मेदार है। साथ ही हमें यह बड़ा सवाल भी पूछना चाहिए कि भारत के तथाकथित "लोकतांत्रिक" और "धर्मनिरपेक्ष" संविधान का क्या मतलब है, अगर संविधान में मौलिक अधिकार के तौर पर दिये गये जीने के अधिकार से ज्योतिनगर के निवासियों को लगातार साफ़ पानी की आपूर्ति न देकर वंचित किया जा रहा है, और अगर नागरिकों को अपनी पसन्द की पार्टी को वोट देने के लोकतांत्रिक अधिकार से सामूहिक सज़ा के तौर पर वंचित किया जा रहा है—सिर्फ़ इस आधार पर कि उन्होंने सत्ताधारी दल को वोट नहीं दिया? इसलिए ज्योतिनगर के निवासियों का यह शक़ कि ऐसा इसलिए किया जा रहा है ताकि उन्हें यह जगह छोड़ने पर मजबूर किया जा सके और गंगा (हुगली) के किनारे वाली ज़मीन अडानी को बेची जा सके, पूरी तरह से जायज़ है! जिस तरह से भाजपा सरकार अम्बानी और अडानी जैसे पूँजीपतियों की सेवा में दण्डवत होकर काम कर रही है, उसे देखते हुए यह शक़ बेबुनियाद नहीं है! उन्होंने बार-बार दिखाया है कि वे अपने आकाओं की सेवा के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं! मुस्लिम अल्पसंख्यकों को दुश्मन के तौर पर पेश करना और धर्म के नाम पर लोगों को बाँटना उनका पुराना तरीक़ा रहा है और यहाँ भी ऐसा ही होता दिख रहा है।

मौजूदा हालात में, भाजपा-संघ द्वारा इलाक़े में फैलायी गयी साम्प्रदायिक नफ़रत के कारण ज्योतिनगर के निवासियों को पूरी तरह से साम्प्रदायिक और बर्बर तरीक़े से अलग-थलग कर दिया गया है। यहाँ तक कि 10 साल के बच्चों को भी पीने का पानी लाने के लिए लगभग एक किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। निवासियों को नहाने और शौचालय समेत साफ-सफ़ाई के कामों के लिए बहुत ज़्यादा प्रदूषित हुगली नदी का पानी इस्तेमाल करने पर मजबूर होना पड़ता है। ज़ाहिर है, इससे त्वचा के संक्रमण के मामले तेज़ी से बढ़ रहे हैं, और बच्चों व बुजुर्गों को सबसे ज़्यादा ख़तरा है। लेकिन सुवेन्दु अधिकारी सरकार के अमानवीय फ़ासीवादी शासन ने अब तक कोई क़दम नहीं उठाया है और निवासियों

(पेज 16 पर जारी)

नेपाल में आया भीषण सैलाब

यह आपदा प्राकृतिक नहीं, बल्कि पूँजीवाद-जनित है

● आनन्द

26 अगस्त की सुबह उत्तरी नेपाल के रसुवा, नुवाकोट और धादिंग जिलों में भोटेकोशी और त्रिशूली नदियों के समीप बसे गाँवों, कस्बों और बाजारों में लोग-बाग रोज़मर्रा के कामों में लगे हुए थे। चूँकि यह इलाक़ा तिब्बत की सीमा लांगटांग ट्रेकिंग रूट के निकट है इसलिए बहुत बड़ी संख्या में पर्यटक भी अपनी आगे की यात्रा की तैयारी कर रहे थे। कैलाश मानसरोवर और गोसाईं कुण्ड जैसे तीर्थ स्थानों का रास्ता भी इसी इलाक़े से होकर जाता है, इसलिए बड़ी संख्या में तीर्थयात्री भी इस इलाक़े में मौजूद थे। तभी अचानक सुबह करीब 9 बजे इस इलाक़े में एक ऐसा विनाशकारी सैलाब आया जिसके बारे में किसी को भनक तक नहीं थी। देखते ही देखते मलबे और पानी के सैलाब ने दर्जनों गाँव, कस्बों और बाजारों का अस्तित्व मिटा दिया। भोटेकोशी और त्रिशूली नदियों के किनारे बसे सैकड़ों घर-मकान-दुकानें और वाहन मलबे में तब्दील हो गये और इन नदियों के किनारे स्थित दर्जनों पनबिजली परियोजनाएँ, पुल और सड़कें तबाह हो गयीं और यातायात एवं संचार तंत्र के नष्ट होने से कई हिस्से देश के बाक़ी हिस्सों से कट गये। इस लेख के लिखे जाने तक 1400 से ज़्यादा लोगों की मृत्यु होने की पुष्टि हो चुकी है और 5 हज़ार से ज़्यादा लोग लापता हैं। ज़मीनी ख़बरों के मुताबिक़ मरने वालों की वास्तविक संख्या आधिकारिक आँकड़ों से कई गुना ज़्यादा है। इन इलाक़ों में निर्माणाधीन पनबिजली परियोजनाओं के तहत बनायी जा रही सुरंगों में करीब एक हज़ार मज़दूर भी फँस गये थे जिनके बचने की सम्भावना अब न के बराबर है। जो लोग इस बाढ़ में किसी तरह से बच गये उनका घर-बार, खेत-खलिहान, मवेशी व पालतू पशु सब कुछ बाढ़ में तबाह हो चुका है। उनका भविष्य अनिश्चित और अंधकारमय है और वे सरकार व स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे राहत शिविरों में रहने को मजबूर हैं।

कैसे आयी नेपाल में इतनी बड़ी आपदा?

नेपाल में बाढ़, भूस्खलन, हिमस्खलन और भूकम्प जैसी आपदाएँ पहले भी बड़े पैमाने पर तबाही मचाती आयी हैं। अभी पिछले साल ही भोटेकोशी-त्रिशूली नदी तंत्र में बाढ़ आयी थी जिसमें काफ़ी तबाही हुई थी और जनजीवन अस्तव्यस्त हुआ था। लेकिन इस बार इस इलाक़े में 26 अगस्त को अचानक जो बाढ़ आयी वह अभूतपूर्व थी जिसके बारे में किसी को तनिक भी अन्दाज़ा नहीं था। ग़ौरतलब है कि इस बार की आपदा

की वजह असामान्य वर्षा नहीं थी। 26 अगस्त को जब सैलाब आया तो उसके ठीक पहले वहाँ मौसम सामान्य था और भारी बारिश का कोई अन्देशा नहीं था। फिर भी अचानक सुबह-सुबह भोटेकोशी और त्रिशूली नदियों में करीब 100 मीटर ऊँची पानी और मलबे की दीवार करीब 50 मीटर प्रति सेकण्ड की शुरुआती रफ़्तार से आगे बढ़ी और कुछ घण्टों के भीतर ही करीब 168 किलोमीटर के क्षेत्र में रास्ते में पड़ने वाली सड़कों, पुलों, सुरंगों, घरों और वाहनों को अपने साथ बहा ले गयी। सैलाब इतनी तेज़ी से आया



कि नदियों के आसपास की सड़कों, पुलों, सुरंगों, घरों, दुकानों और मकानों में मौजूद हज़ारों निवासियों, मज़दूरों, पर्यटकों और तीर्थयात्रियों को सँभलने का मौक़ा तक नहीं मिला।

इस भीषण सैलाब की शुरुआत 26 अगस्त की सुबह करीब साढ़े आठ बजे नेपाल-तिब्बत सीमा पर स्थित करीब 7200 मीटर ऊँची लांगटांग लिरुंग पर्वत चोटी से अचानक एक विशालकाय चट्टान व ग्लेशियर के टूटने से हुई। चट्टान और बर्फ़ का यह मलबा करीब 1300 मीटर नीचे ल्हेंदे नदी में जा गिरा। यह परिघटना इतनी धमाकेदार थी कि अमेरिकी भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण ने इसे भूकम्प के रूप में प्रसारित किया। बाद में यह स्पष्ट किया गया कि वह झटका दरअसल चट्टान और बर्फ़ के गिरने की वजह से आया था। उसके बाद कुछ समय के लिए मलबे की वजह से उस नदी का बहाव रुक गया और एक प्राकृतिक बाँध बन गया जिसके पीछे नदी में पानी जमा होने लगा। जल्द ही यह प्राकृतिक बाँध टूट गया और पत्थर, गाद, मिट्टी, बर्फ़ और पानी से बनी एक कीचड़नुमा दीवार जैसा सैलाब बेहद तेज़ रफ़्तार से ढलान से होते हुए नदी की घाटी में आगे बढ़ा और रास्ते में आसपास की चट्टानों और पत्थरों को अपने साथ लेता गया। ल्हेंदे नदी नेपाल-चीन की सीमा पर स्थित रसुवागढ़ी बॉर्डर क्रॉसिंग के पास भोटेकोशी नदी से मिलती है और वहाँ से यह पानी और मलबे का सैलाब भोटेकोशी नदी से

होता हुआ आगे स्याफ़ुबेसी में त्रिशूली नदी में जा पहुँचा और त्रिशूली नदी के आसपास के क्षेत्रों में तबाही मचाता हुआ आगे बढ़ा। इस सैलाब का क्रूर शाम को करीब 4 बजे तक देवघाट में नारायणी नदी तक देखा गया और उसके बाद इसकी रफ़्तार धीरे-धीरे कम होती गयी। ग़ौरतलब है कि नारायणी नदी आगे चलकर भारत में उत्तर प्रदेश व बिहार में गण्डक नदी के नाम से जानी जाती है और पटना के पास गंगा नदी में मिल जाती है। यानी जिन नदियों में सैलाब आया वे गंगा नदी तंत्र का ही हिस्सा हैं।



नेपाल में आयी आपदा के लिए ज़िम्मेदार कौन?

सवाल यह उठता है कि नेपाल में आयी आपदा के लिए ज़िम्मेदार कौन है? अक्सर इन आपदाओं को प्राकृतिक आपदा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसका अर्थ होता है कि इनपर मनुष्य का कोई नियंत्रण नहीं है और उनके लिए किसी की जवाबदेही नहीं तय की जा सकती। इस प्रकार इन्हें प्राकृतिक आपदा के रूप में प्रस्तुत करके शासक वर्ग अपना पल्ला झाड़ लेते हैं। परन्तु जैसे ही हम इन आपदाओं की वजूहात की गहराई से पड़ताल करते हैं वैसे ही हम पाते हैं कि इन आपदाओं के पीछे व्यवस्थागत पहलू ज़िम्मेदार हैं। अब तमाम वैज्ञानिक यह मानते हैं कि हाल के दशकों में पृथ्वी का तापमान बढ़ने और मौसम के पैटर्न में आये बदलावों के पीछे जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग की अहम भूमिका रही है। इन परिघटनाओं की वजह से दुनिया के विभिन्न हिस्सों

में असामान्य वर्षा, हीटवेव और ग्लेशियरों व पर्माफ्रॉस्ट (पहाड़ों की चोटियों पर ज़मीन, चट्टान व मिट्टी जो हमेशा जमी होने के कारण पहाड़ों को स्थिर रखने में अहम भूमिका निभाती है) के पिघलने के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। हिमालय के क्षेत्र में भी हाल के वर्षों में तापमान तेज़ी से बढ़ा है, वर्षा का पैटर्न बदल रहा है तथा पहाड़ों की चोटियों पर ग्लेशियर व पर्माफ्रॉस्ट तेज़ी से पिघल रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी एक आँकड़े के मुताबिक़ नेपाल में हिमालय क्षेत्र में पिछले 30 वर्षों के दौरान एक तिहाई ग्लेशियर पिघल गये। पिछले दशक में ग्लेशियरों के पिघलने की रफ़्तार उसके पहले के दशक की तुलना में 65 प्रतिशत अधिक थी।

ग़ौरतलब है कि हिन्दुकुश-हिमालय पर्वत तंत्र में तापमान के बढ़ने और ग्लेशियरों तथा पर्माफ्रॉस्ट के पिघलने के लिए पूरी दुनिया और खासतौर पर साम्राज्यवादी देशों में हुआ पूँजीवादी विकास ज़िम्मेदार है। मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए विकास के नाम पर जीवाश्म ईंधनों को बेतहाशा जलाने से लेकर अंधाधुंध जंगलों की कटाई के

रूप में जो विनाश किया जा रहा है उसका नतीजा पृथ्वी पर जलवायु परिवर्तन और औसत तापमान के बढ़ने के रूप में सामने आ रहा है। विडम्बना यह है कि नेपाल जैसा देश जो कार्बन डाईऑक्साइड और ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में नगण्य भूमिका निभाता है और जिसका जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग में नगण्य योगदान है उसे उसकी भौगोलिक स्थिति की वजह से भीषण बाढ़ जैसी आपदाओं का दंश झेलना पड़ रहा है। ग़ौरतलब है कि दुनिया की सबसे ऊँची 10 पर्वतीय चोटियों में से 8 नेपाल में स्थित हैं जिसमें दुनिया की सबसे ऊँची चोटी माउंट एवरेस्ट भी शामिल है। हिमालय की यह विकट भौगोलिक परिस्थिति नेपाल के न सिर्फ़ सामान्य जनजीवन और यातायात को प्रभावित करती है बल्कि उस देश में बाढ़, भूस्खलन, हिमस्खलन और भूकम्प जैसी आपदाओं की सम्भावना को भी बढ़ाती है।

ग़ौरतलब है कि हिन्दुकुश-हिमालय पर्वत तंत्र दुनिया के सबसे नये पर्वत तंत्र में से एक है और उसकी ऊँचाई अभी भी बढ़ रही है। इस वजह से वह बेहद अस्थिर व नाज़ुक भी माना जाता है। इस दी हुई भौगोलिक परिस्थिति में हिमालय के पूरे क्षेत्र में बेहद सावधानीपूर्वक और योजनाबद्ध ढंग से ही विकास की गतिविधियों को अंजाम देने की ज़रूरत है ताकि उसकी अस्थिरता और न बढ़े। परन्तु हिमालय के पूरे क्षेत्र में चीन, भारत, पाकिस्तान और नेपाल में हाल के दशकों में जिस प्रकार से पहाड़ों और जंगलों को बेरहमी से काटकर योजनाविहीन, अनियंत्रित और अंधाधुंध ढंग से सड़कों, पुलों, सुरंगों, पनबिजली परियोजनाओं एवं अन्य बुनियादी ढाँचे का विकास हुआ है उसकी वजह से आपदाओं की सम्भावना में ज़बरदस्त इज़ाफ़ा हुआ है। नेपाल में आयी आपदा से पहले भी हम उत्तराखण्ड के चमोली, जोशीमठ, धराली और केदारनाथ में भीषण त्रासदियों के गवाह रहे हैं। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, उत्तर-पूर्वी राज्यों एवं पाकिस्तान में भी हाल के वर्षों में भीषण आपदाओं की बारम्बारता और भयावहता बढ़ी है। यदि ग्लोबल वार्मिंग इसी क्रूर बढ़ती गयी और हिमालय के क्षेत्र में पूँजीवादी विकास इसी तरह से बेलगाम होता रहा तो नेपाल ही नहीं समूचे दक्षिण एशिया में आने वाले दिनों में भूस्खलन, हिमस्खलन, बाढ़ और सूखे की बारम्बारता व भयावहता बढ़ती जायेगी जिसका असर भीषण कृषि संकट, खाद्य संकट और बड़े पैमाने पर विस्थापन के रूप में सामने आयेगा जो सामाजिक असन्तोष को बढ़ायेगा। यही नहीं ग्लेशियरों के पिघलने से समुद्र का तलस्तर भी बढ़ रहा है जिसकी वजह से तटीय क्षेत्रों में स्थित टापुओं, शहरों, कस्बों और गाँवों के डूबने का खतरा भी बढ़ता जा रहा है। नेपाल में इस बार आये सैलाब ने इतना ख़ौफ़नाक रूप धारण किया इसका एक कारण यह था कि नदियों के किनारे बड़े पैमाने पर निर्मित या निर्माणाधीन संरचनाएँ मौजूद थीं और बहुत बड़ी संख्या में लोग नदियों के आसपास मौजूद थे। ग़ौरतलब है कि नेपाल जैसे पहाड़ी इलाक़ों में पारम्परिक रूप से लोग नदियों के किनारे बसावट नहीं करते थे और अमूमन अपना घर नदियों से दूर पहाड़ियों पर बनाया करते थे। परन्तु हाल के वर्षों में नेपाल में भी व्यापार, पर्यटन और तीर्थयात्रा को बढ़ावा देने के नाम पर अंधाधुंध योजनाविहीन शहरीकरण हुआ है और नदियों के किनारे उनके फ़्लडप्लेन (बाढ़ का मैदान) पर घरों, दुकानों, (पेज 16 पर जारी)

नेपाल में आया भीषण सैलाब प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि पूँजीवाद-जनित है

(पेज 15 से आगे)

सड़कों, पुलों और पनबिजली परियोजनाओं का विशाल तंत्र विकसित हुआ है। यह विकास पूरी से अनियोजित व अनियंत्रित रहा है और प्रायः सत्ता के संरक्षण में निजी ठेकेदारों द्वारा मुनाफ़े के मक़सद से किया जाता रहा है। हिमालय के पूरे इलाक़े के पारिस्थिक तंत्र को नज़रअन्दाज़ करके हो रहा अनियोजित पूँजीवादी विकास आपदाओं की भयावहता और उनसे होने वाले जानमाल के नुक़सान को कई गुना ज़्यादा बढ़ा रहा है।

क्या ऐसी त्रासदियों को रोका जा सकता है?

नेपाल जैसी त्रासदियों के कारण जानने के बाद यह स्पष्ट है कि जब तक विकास का मक़सद चन्द लोगों का मुनाफ़ा रहेगा तब तक इन त्रासदियों से निजात नहीं पायी जा सकती है। अब पर्यावरण व पारिस्थितिक तंत्र का विनाश इस हद तक हो चुका है कि आज पूँजीवाद की चौहद्दी के भीतर महज़ कुछ हरित नीतियों के ज़रिये सतत या टिकाऊ विकास की सारी बातें बिल्कुल बेमानी हैं। ऐसे में पूँजीवाद के भीतर समाधान खोजने के बजाय हमें पूँजीवाद का ही विकल्प खड़ा करना होगा। एक नियोजित व

मानवकेन्द्रित समाज में ही सामाजिक समता व समरसता के साथ ही साथ पारिस्थितिक सन्तुलन भी स्थापित किया जा सकता है। केवल एक नियोजित अर्थव्यवस्था में ही उत्पादन, वितरण, विद्युत उत्पादन, संचार व परिवहन से सम्बन्धित गतिविधियों को इस प्रकार संचालित किया जा सकता है कि वे पर्यावरण को तबाह न करें। ऐसी समाजवादी अर्थव्यवस्था में ही यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि भौतिक विकास पर्यावरण के विनाश का सबब न बने। समाजवादी समाज में ही योजनाबद्ध ढंग से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर नियंत्रण करके ग्लेशियरों व पर्माफ्रॉस्ट के पिघलने की गति को क़ाबू में किया जा सकता है। चूँकि समाजवादी समाज में उत्पादन और विकास का मक़सद मुनाफ़ा कमाना नहीं बल्कि समग्रता में लोगों का कल्याण होगा और उसमें विकास की प्रक्रिया को बाज़ार की अराजकता नहीं बल्कि लोगों की ज़रूरतें संचालित करेंगी इसलिए उसमें प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन पर नकेल कसी जा सकती है। इसका मतलब यह है कि समाजवाद के अन्तर्गत प्रकृति के साथ मानव अन्तःक्रिया व हस्तक्षेप की अपकर्षी या विनाशकारी भूमिका नहीं बल्कि पुनर्योजी भूमिका होगी।

समाजवाद में ही शहरीकरण की प्रक्रिया को एक योजना के अनुसार आगे बढ़ाया जा सकता है ताकि शहरों में आबोहवा, ड्रेनेज, सीवरेज, अपशिष्ट प्रबन्धन और यातायात आदि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान किया जा सके। योजनाबद्ध शहरीकरण के ज़रिये ही यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि नदियों, झीलों, तालाबों या अन्य जलाशयों के आसपास निर्माण की गतिविधियाँ न अंजाम दी जायें। साथ ही समाजवाद में योजनाबद्ध विकास का एक अहम पहलू यह होगा कि उसमें लोगों की सामूहिक पहलक़दमी के दम पर पर्यावरण को बचाने का मिशन एक जनान्दोलन का रूप अख़्तियार करेगा। यदि इस प्रकार योजनाबद्ध और सामूहिक ढंग से कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन, खदानों का दोहन, शहरीकरण और विकास की प्रक्रिया संचालित होगी तो निश्चय ही आपदाओं की बारम्बारता और उनकी भयावहता को काफ़ी हद तक कम किया जा सकता है और प्रकृति के साथ एक सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध क़ायम किया जा सकता है।

एक समाजवादी समाज में ही आपदा प्रबन्धन के काम को भी प्रभावी ढंग से अंजाम दिया जा सकता है और किसी आपदा के आने के फौरन बाद त्वरित

कार्रवाई के ज़रिये बेशकीमती जानें बचायी जा सकती हैं। जैसाकि नेपाल में बाढ़ की आपदा में देखने में आ रहा है, पूँजीवादी व्यवस्था में आपदा प्रबन्धन की मशीनरी आपदा आने के बाद धीरे-धीरे सक्रिय होती है और वह आम लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के बजाय या तो नौकरशाही तंत्र के ज़रिये या फिर स्वयंसेवी संस्थाओं के ज़रिये राहत, बचाव व पुनर्निर्माण के काम को अंजाम देती है। नेपाल में राज्य की मशीनरी बेहद कमज़ोर और अकुशल होने की वजह से भारी संख्या में देशी-विदेशी स्वयंसेवी संस्थाएँ राहत व बचाव के कामों में लगी हैं और उनमें आपस में कोई तालमेल नहीं है। यही वजह है कि राहत व बचाव का काम बेहद सुस्त, अनियोजित और अप्रभावी ढंग से अंजाम दिया जा रहा है जिससे लोगों की जान और आजीविका बचाने और उनके जीवन को वापस पटरी में लाने में बेपनाह मुश्किलें सामने आ रही हैं। बहुत सारे लोग राहत, बचाव व पुनर्निर्माण के कामों में भागीदारी करने के लिए तैयार हैं परन्तु नेपाल की पूँजीवादी सत्ता के पास लोगों की सामूहिक पहलक़दमी के ज़रिये संकट से उबरने की कोई योजना नहीं है। इसके उलट समाजवादी समाज में

राहत, बचाव और पुनर्निर्माण का काम भी व्यवस्थित ढंग से आम लोगों को बड़े पैमाने पर लामबन्द करके सामूहिकता के बल पर प्रभावी ढंग से अंजाम दिया जा सकेगा। अतीत में ऐसा हुआ भी है। इसलिए पर्यावरण के प्रश्न को उत्पादन प्रणाली से स्वतंत्र एक पृथक समस्या के रूप में उठाने से इस समस्या के वास्तविक समाधान की ओर नहीं बढ़ा जा सकता है। पर्यावरण के प्रश्न पर काम करने वाली तमाम गैर-सरकारी संस्थाएँ इस प्रश्न को पूँजीवाद के दायरे तक सीमित रखती हैं और इस वजह से वे पर्यावरण की समस्या के समाधान की दिशा में आगे बढ़ने के बजाय इस विनाशकारी व्यवस्था के प्रति भ्रम पैदा करती हैं, आम तौर पर मनुष्य की प्रकृति से अन्तःक्रिया को ही ज़िम्मेदार ठहराती हैं और समस्या की जड़ तक जाने से बचती हैं। नेपाल में आयी आपदा चीख-चीख कर पूँजीवादी विकास के विनाशकारी चरित्र के प्रति चेतावनी दे रही है। आज ज़रूरत इस चेतावनी पर संजीदगी से ध्यान देते हुए पर्यावरण के प्रश्न को मज़दूर वर्ग के नज़रिये से उठाने और पर्यावरण बचाने के संघर्ष को पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष से जोड़ने की है।

बर्बरता के नित नये प्रतिमान गढ़ने में लगी पश्चिम बंगाल की भाजपा सरकार! कोलकाता में मेहनतकशों की एक बस्ती का पानी किया बन्द!

(पेज 14 से आगे)

को लगातार बेहद पीड़ादायक स्थिति में रखा है। ऐसे में आज हर इन्साफ़पसन्द शास्त्र को माँग करनी होगी कि ज्योतिनगर बस्ती में पानी की आपूर्ति फ़ौरन बहाल की जाये, इलाक़े में बीमार पड़े सभी लोगों को तुरन्त आपातकालीन चिकित्सकीय इलाज मुहैया कराया जाये, पानी की आपूर्ति में लगातार रुकावट और इस तरह ज्योतिनगर के नागरिकों को एक बहुत ही बुनियादी मानवाधिकार से वंचित रखने के मामले की उच्च-स्तरीय न्यायिक जाँच की जाये, इसके लिए ज़िम्मेदार निचले से लेकर ऊँचे स्तर तक के सभी दोषियों की पहचान की जाये और उन्हें कड़ी सज़ा दी जाये, स्थानीय काशीपुर-बेलगाछिया विधायक, रितेश तिवारी को उनके साम्प्रदायिक बयानों (कि वे मुसलमानों के लिए काम नहीं करेंगे) के लिए तुरन्त गिरफ़्तार किया जाये और पानी की आपूर्ति रोकने के पूरे मामले में उनकी भूमिका की जाँच की जाये, और राज्य के मुख्यमंत्री सुवेन्दु अधिकारी ज्योतिनगर बस्ती के निवासियों से सार्वजनिक रूप से माफ़ी

माँगे कि उनकी सरकार इस तरह की आपराधिक हरकत को रोकने में पूरी तरह नाक़ाम रही है। आज हमारे आसपास जब कई हज़ार लोगों के साथ इतनी बड़ी वारदात हो रही हो और फिर भी अगर यह बात हमें अन्दर तक नहीं झकझोरती, तो हमें खुद से पूछना चाहिए कि क्या हममें थोड़ी भी इंसानियत बची है या भाजपा-संघ के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी प्रचार ने हमें एक जीती जागती लाश में तब्दील कर दिया है? हमें पूछना चाहिए कि क्या हमने अपना दिमाग़ संघ परिवार के हवाले कर दिया है या हम अभी भी सोच-समझ सकते हैं? क्या अब समय नहीं आ गया है कि हम अपने सहनागरिकों के साथ खड़े हों और पूरी ताक़त से आवाज़ उठायें कि राज्य प्रशासन की हिम्मत कैसे हुई उन्हें पानी से वंचित करने की, जो एक बहुत ही बुनियादी और सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया मानवाधिकार है? क्या अब समय नहीं आ गया है कि हम ज्योतिनगर के अपने भाइयों और बहनों के समर्थन में हर जगह बड़ी तादाद में सड़कों पर उतरें?



जन साहित्यकार एदुआर्दो गालिआनो के जन्मदिवस (3 सितम्बर) पर उनकी रचनाओं से दो अंश

दुनिया

कोलम्बिया के सागर तट पर, नेगुआ शहर का एक आदमी आसमान में ऊपर चढ़ जाने में कामयाब हो गया। वापस लौटने पर उसने अपनी यात्रा का वर्णन किया। उसने बताया कि ऊँचाई से कैसे उसने मानव जीवन का अवलोकन किया। उसने बताया कि हम छोटी-छोटी लपटों के सागर हैं। उसने यह रहस्योद्घाटन किया, “यह दुनिया लोगों का एक ढेर है, छोटी-छोटी लपटों का सागर है।” हर व्यक्ति अपनी खुद की रोशनी से चमकता है। कोई भी दो लपटें एकसमान नहीं होतीं। छोटी लपटें हैं और बड़ी लपटें हैं, हर रंग की लपटें हैं। कुछ लोगों की लपटें इतनी स्थिर हैं कि वे हवा में फड़फड़ाती तक नहीं, जबकि कुछ की उग्र लपटें हैं जो हवा को स्फुलिंगों से भर देती हैं। कुछ गावदी लपटें हैं जो न जलती हैं न रोशनी देती हैं, लेकिन कुछ दूसरी इतनी प्रचण्डता के साथ जिन्दगी से धधकती रहती हैं कि कोई बिना पलक झपकाये उनकी ओर देख नहीं सकता और अगर कोई उनके पास जाता है तो आग में चमकने लगता है।

साहित्य को इस गुलाम समाज की आज़ादी की लड़ाई की उम्मीद बनना होगा

तो लोगों को झकझोर कर जगा देने और उन्हें आस-पास की सच्चाई से रू-ब-रू करने का काम कैसे किया जाये? जब दुनिया इस दौर के कठिन हालात से रू-ब-रू है तो क्या साहित्य हमारे काम आ सकता है? संस्कृति का जो रूप सरकारें लेकर आती हैं वह तो सत्ता में बैठे चन्द लोगों के लिए ही है- यह सरकारी संस्कृति बर्बर व्यवस्था को ‘विकास’ और ‘मानवता’ का चेहरा देकर लोगों को गुमराह करती और व्यवस्था का गुलाम बना देती है- ऐसे में अपनी क़लम से नयी दुनिया का राह बनाने वाला लेखक ‘सब ठीक है’ जैसे झूठे दावों पर टिकी व्यवस्था से कैसे लड़े? ऐसे समय में जब हम अपनी अलग-अलग इच्छाओं और सपनों के साथ एक-दूसरे को सिर्फ़ फ़ायदे और नुक़सान के नज़रिये से देख-समझ और परख पा रहे हैं तब सबको साथ लेकर चलने और दुनिया की तस्वीर बदलने का ख़्वाब संजोने वाले साहित्य की क्या भूमिका हो? हमारे आस-पास के हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि लिखना और कुछ नहीं बल्कि एक के बाद दूसरी समस्याओं की बात करना और उनसे भिड़ना हो गया है- तब हमारा लिखना किन लोगों के खिलाफ़ और किनके लिए हो? लातिन अमेरिका में हम जैसे लेखकों की क्रिस्मत और सफ़र बहुत हद तक बड़े सामाजिक बदलावों की ज़रूरत से सीधे-सीधे जुड़ा है- लिखना इस बदलाव के लिए लड़ना ही है क्योंकि यह तो तय है कि जब तक ग़रीबी, अशिक्षा और टी.वी. तथा बाक़ी संचार माध्यमों के फैलते जाल पर बैठी सत्ता का राज क़ायम रहेगा तब तक हमारी सबसे जुड़ने और सबके साथ लड़ने की सभी कोशिशें बेकार ही रहने वाली हैं।

जब किसानों-मज़दूरों सहित आबादी के बड़े हिस्से की आज़ादी ख़त्म की जा रही है तब सिर्फ़ लेखकों के लिए कुछ रियायतों या सुविधाओं की बात से मैं सहमत नहीं हूँ। व्यवस्था में बड़े बदलावों से ही हमारी आवाज़ अभिजात महफ़िलों से निकल कर खुले और छिपे सभी प्रतिबन्धों को भेद कर उस जनता तक पहुँचेगी जिसे हमारी ज़रूरत है और जिसकी लड़ाई का हिस्सा हमें बनना है। अभी के दौर में तो साहित्य को इस गुलाम समाज की आज़ादी की लड़ाई की उम्मीद ही बनना है।

सत्यनिकेतन पीजी हादसा: मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था द्वारा युवाओं की हत्या!

पीजी मालिकान के मुनाफ़े की हवस व प्रशासनिक लापरवाही की भेण्ट चढ़ गये दर्जनों आम छात्र!

● रऊफ़

रविवार छः सितम्बर दोपहर डेढ़ बजे के करीब, दिल्ली विश्वविद्यालय के मुख्य साउथ कैम्पस से लगभग दो किलोमीटर दूर सत्यनिकेतन इलाक़े में 'हॉस्टल डेज' नामक एक पाँच मंज़िला इमारत धराशायी हो गयी। चूँकि यह छुट्टी का दिन था ऐसे में हादसे के वक़्त लगभग 4 दर्जन लोगों की इमारत के अन्दर मौजूदगी की आशंका जतायी जा रही थी। बहरहाल, इस दर्दनाक घटना के 10 मिनट के अन्दर ही नज़दीकी पुलिस थाने में इत्तला दे दी गयी थी जिसकी पुष्टि खुद पुलिस कॉल रिकॉर्ड से हुई। बावजूद इसके, बचाव एवं राहत कार्य सम्बन्धी दलों को इस जगह पहुँचने में डेढ़ घण्टे से अधिक समय लगा।

इस घटना की शुरुआती तहकीकात में ही यह सामने आ गया था कि यह इमारत तमाम सुरक्षा मानदण्डों का उल्लंघन करते हुए ग़ैर-क़ानूनी रूप से

इतने वक़्त बाद भी इस बारे में कोई ठोस जानकारी नहीं दी गयी है कि बेसमेण्ट में खुदाई का कार्य किस स्तर तक पूरा हुआ और क्या नतीजे प्राप्त हुए!

यह नियमित तौर पर सेफ़्टी ऑडिट यानी सुरक्षा जाँच न करने की प्रशासनिक लापरवाही का ही नतीजा था कि आम लोगों को जान गँवानी पड़ी। और यदि हम सोचते हैं कि सत्यनिकेतन या दिल्ली व देश के अन्य किसी कोने में ऐसी दर्दनाक घटनाएँ कभी-कभार की ही बात हैं तो यह हमारी ख़ुशफ़हमी है। सत्यनिकेतन में ही 2022 में इसी तरह की ढाँचागत गड़बड़ी व प्रशासनिक लापरवाही के चलते दो मज़दूर मारे गये थे। देशभर में तो इस तरह की घटनाएँ अकसर पढ़ने, सुनने में आती ही रहती हैं।

गौरतलब है कि निकम्मे प्रशासन की ढिलाई और लापरवाही के चलते वहाँ राहत एवं बचाव कार्य सम्बन्धी दल

झटपट घटना स्थल पर कूद पड़ना कोई हैरानी की बात नहीं थी। क्रेडिटखोरी की होड़ में इन सभी चुनावबाज़ पार्टियों के पिछलग्गू छात्र संगठनों ने गम्भीर हादसे पर भी वीभत्स नौटंकी करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया और उल्टे राहत कार्य को बाधित करने का ही काम किया।

इसी क्रम में संशोधनवादी चुनावबाज़ पार्टियों के दुमछल्ले छात्र संगठन मसलन आइसा, एसएफ़आई भी किसी आन्दोलन को लपककर रही-सही कोई उम्मीद भी ख़त्म करने की अपनी पुरानी आदत से मजबूर वहाँ पहुँचकर लाइमलाइट की घटिया राजनीति शुरू करने लगे। विशेषकर सीजेपी आन्दोलन की चमक-दमक की धुन पर सवार आइसा ने तो आनन-फ़ानन में घटना स्थल पर अनिश्चितकालीन धरने की घोषणा कर डाली! ज़ाहिर है, उनकी इस नौटंकी के पीछे का प्रमुख कारक आगामी डूसू चुनाव थे वरना आइसा का अनिश्चितकालीन धरना कितना सुनिश्चितकालीन होता है – यह तो हम सीजेपी आन्दोलन के समय ख़ूब देख ही चुके!

ख़ैर, आइसा व अन्य कथित वाम छात्र संगठनों ने प्रदर्शनस्थल पर सिवाय नारेबाज़ी के कुछ भी नहीं किया। माँगों से सम्बन्धित कोई पोस्टर, बैनर उनकी सभा में लगभग नदारद ही रहा और आम छात्रों के बीच व्यवस्थित अभियान चलाकर उन्हें हॉस्टल जैसी

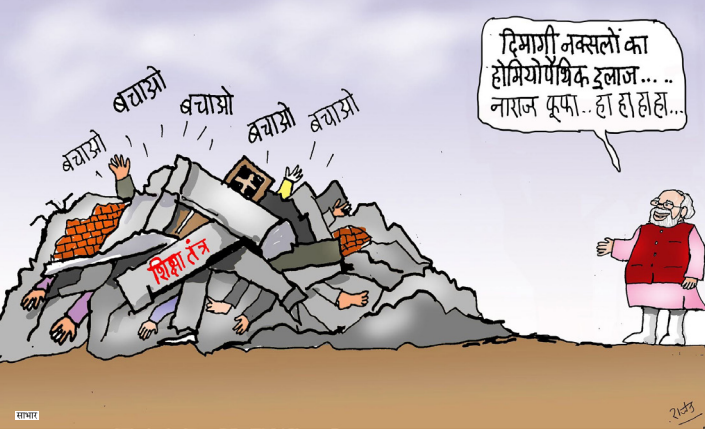
बुनियादी माँगों के इर्द-गिर्द लामबन्द करने का न तो उन्होंने कोई प्रयास किया और न ही ऐसी कोई मंशा ही ज़ाहिर की।

हालाँकि 'दिशा छात्र संगठन' एक स्वतंत्र क्रान्तिकारी ताक़त के तौर पर घटनास्थल व उसके आसपास शुरू से ही मौजूद रहा और अपनी सीमित ताक़त के बूते 'दिशा छात्र संगठन' के कार्यकर्ताओं ने सत्यनिकेतन में रहने वाले आम छात्रों के बीच पर्चा वितरण व हस्ताक्षर अभियान चलाने का कार्य किया। 'दिशा छात्र संगठन' अपनी सभाओं व पर्चों, माँगपत्रक के ज़रिये लगातार इस बात पर ज़ोर देता रहा कि यह वक़्त दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा सबको हॉस्टल मुहैया कराये जाने की माँग पर एक जुझारू जनआन्दोलन खड़ा करने के लिए एकदम मुफ़ीद है। साथ ही, दिशा के कार्यकर्ताओं ने इस मसले पर विश्वविद्यालय के नॉर्थ कैम्पस में रैली में भी अहम भागीदारी की और नॉर्थ व साउथ कैम्पस के कुछ कॉलेजों में इस मसले पर अभियान भी चलाया।

सत्यनिकेतन की इस दर्दनाक घटना ने दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन की भी कलाई खोल कर रख दी। मुखर्जी नगर से लेकर नाँगलोई जैसे इलाक़ों में विश्वविद्यालय की कुल 200 एकड़ ज़मीन खाली होने के बावजूद आज बमुश्किल 2 फ़ीसदी छात्रों को छात्रावास की मूलभूत सुविधा मिल पा रही है। इस खाली ज़मीन पर रिहाइश

का इन्तज़ाम करना तो दूर की बात, उल्टे यूनिवर्सिटी उपलब्ध हॉस्टलों पर भी एक-एक कर ताला लगाने पर आमदा है।

हालत यह है कि कुछ दो-ढाई लाख छात्रों में से सिर्फ़ कुछ 7000 के लगभग हॉस्टल की सीटें हैं। इसलिए मुनाफ़ाख़ोर पीजी माफ़िया, दिल्ली सरकार के साथ-साथ यह निकम्मा दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन भी सत्यनिकेतन में हुई दर्दनाक मौतों के लिए ज़िम्मेदार है जो आम छात्रों को हॉस्टल जैसी बुनियादी सुविधा मुहैया नहीं कराता और सत्यनिकेतन, मलकागंज, कमलानगर के गन्दे, बदबूदार, दमघोंटू दड़बेनुमा महँगे कमरों में रहने को विवश करता है जहाँ बरसों से सुरक्षा की जाँच सम्बन्धी सर्वेक्षण नहीं हुए होते हैं और आग लगने से लेकर जर्जर इमारतों के ढह जाने के डर की तलवार आम छात्रों की गर्दन पर लगातार लटकी ही रहती है। ऐसे में रिहाइशी इलाक़ों में निरन्तर तौर पर इमारतों की सुरक्षा जाँच, छात्र बहुल इलाक़ों में रेण्ट कण्ट्रोल अधिनियम लागू कराने व सबको हॉस्टल जैसी बुनियादी माँगों को लेकर एक जुझारू समझौताविहीन संघर्ष खड़ा करना आज एक ज़िन्दा सवाल बन चुका है। इनमें से किसी भी एक माँग पर किसी भी तरह का समझौता आम छात्र-युवा आबादी के लिए पराजय साबित होगा।



चल रही थी। पीजी मालिक द्वारा अधिकाधिक मुनाफ़ा कमाने की चाहत में बग़ैर किसी अनुमति के बेसमेण्ट में मरम्मत का काम चल रहा था। इस इलाक़े के पीजी मालिकों के भाजपा से घनिष्ठ सम्बन्धों की पोलपट्टी भी आने वाले दिनों में खुल गयी। दिल्ली में भाजपा की 'ट्रिपल इंजन' सरकार की असलियत इस हादसे के बाद एक बार फिर से पूरे देश के सामने आ गयी। हादसे के कुछ दिनों बाद तक 'तू नंगा-तू नंगा' का बेशर्म खेल भी भाजपाइयों के बीच चला!

इससे बड़ी त्रासदी क्या हो सकती है कि व्यवस्थागत गड़बड़ी व क़ानूनों के गम्भीर उल्लंघन की इस ख़बर को बाहर आने के लिए भी पहले 7 लोगों को बेमौत मरना पड़ा। यहाँ तक कि बचाव अभियान ख़त्म होने के बाद भी मौतों की सही संख्या को लेकर गम्भीर प्रश्नचिन्ह लगे क्योंकि घटना के वक़्त इमारत में 40-50 लोगों के होने का अनुमान था जो कि मृतकों व घायलों के सरकारी आँकड़ों के मुकाबले एक बड़ी संख्या है। दूसरे, इमारत के बेसमेण्ट में काम चल रहा था तो कई मज़दूरों के भी हताहत होने की आशंका है परन्तु रेस्क्यू ऑपरेशन की समाप्ति के

डेढ़ घण्टे देरी से पहुँचते हैं। उनके आने से पहले ही सत्यनिकेतन में रहने वाले आम छात्र वहाँ लोगों की सहायता के लिए जुटने लगे थे और मलबे से घायलों व मृतकों को निकालने की प्रक्रिया में शामिल होने लगे। आमतौर पर ही हॉस्टल जैसी बुनियादी सुविधा मुहैया न होने के चलते दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र सत्यनिकेतन जैसे इलाक़ों में बेहद ख़तरनाक परिस्थितियों में रहने को विवश हो जाते हैं। ऐसे में, सत्यनिकेतन का यह हादसा होने के बाद बरसों से ख़तरनाक परिस्थितियों में रहने को मजबूर आम छात्र-युवा हॉस्टल की माँग, रेग्युलर सेफ़्टी ऑडिट व घायलों व मृतकों को मुआवज़े जैसी जायज़ बुनियादी माँगों के इर्द-गिर्द स्वतःस्फूर्त ढंग से घटनास्थल के आसपास प्रदर्शन करने लगे।

चूँकि यह घटना दिल्ली विश्वविद्यालय छात्रसंघ चुनावों के माहौल में हुई तो ऐसे में पूँजीपतियों के चुनावबाज़ राजनीतिक दलों के पिछलग्गू छात्र संगठन मसलन भाजपा-आरएसएस के एबीवीपी, काँग्रेस के एनएसयूआई का चील-गिद्धों की मानिन्द लाशों पर अपनी चुनावी रोटियाँ सेंकने के लिए

क्रान्तिकारी कवि अवतार सिंह 'पाश' के जन्मदिवस (9 सितम्बर)

के मौक़े पर उनकी एक प्रसिद्ध कविता

देश की सुरक्षा

यदि देश की सुरक्षा यही होती है
कि बिना ज़मीर होना जिन्दगी के लिए शर्त बन जाये
आँख की पुतली में हाँ के सिवाय
कोई भी शब्द अश्लील हो
और मन बदकार पलों के सामने दण्डवत झुका रहे
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है।
हम तो देश को समझे थे घर-जैसी पवित्र चीज़
जिसमें उमस नहीं होती
आदमी बरसते मेंह की गूँज की तरह गलियों में बहता है
गेहूँ की बालियों की तरह खेतों में झूमता है
और आसमान की विशालता को अर्थ देता है
हम तो देश को समझे थे
आलिंगन-जैसे एक एहसास का नाम
हम तो देश को समझते थे काम-जैसा कोई नशा
हम तो देश को समझते थे कुरबानी-सी वफ़ा
लेकिन गर देश
आत्मा की बेगार का कोई कारख़ाना है
गर देश उल्लू बनने की प्रयोगशाला है
तो हमें उससे ख़तरा है
गर देश का अमन ऐसा होता है
कि क़र्ज़ के पहाड़ों से फिसलते पत्थरों की तरह

टूटता रहे अस्तित्व हमारा
और तनख़्वाहों के मुँह पर थूकती रहे
क्रीमियों की बेशर्म हँसी
कि अपने खून में नहाना ही तीर्थ का पुण्य हो
तो हमें अमन से ख़तरा है
गर देश की सुरक्षा को कुचल कर अमन को रंग चढ़ेगा
कि वीरता बस सरहदों पर मर कर परवान चढ़ेगी
कला का फूल बस राजा की खिड़की में ही खिलेगा
अक्रल, हुकम के कुएँ पर रहट की तरह ही धरती सींचेगी
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है।



मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

अध्याय-6 (जारी)

पूँजी का टर्नओवर

• अभिनव

निवेशित पूँजी का सकल टर्नओवर

टर्नओवर के प्रश्न के समाधान के लिए बुनियादी अवधारणाओं को स्पष्ट करने के बाद, मार्क्स निवेशित पूँजी के कुल टर्नओवर के प्रश्न पर आते हैं। यह प्रश्न पूँजी के दूसरे खण्ड में हल किया जाने वाला एक प्रमुख प्रश्न है।

इस बिन्दु पर जो पहली गौरतलब बात है वह यह है कि निवेशित पूँजी के विभिन्न तत्त्वों के पुनर्नवीकरण की अवधियाँ अलग-अलग होती हैं। यहाँ तक कि स्वयं चल पूँजी के भी सभी तत्त्वों के भौतिक पुनर्नवीकरण की अवधियाँ एक बराबर नहीं होती हैं। इसी प्रकार अचल पूँजी के विभिन्न तत्त्वों का भौतिक पुनर्नवीकरण अलग-अलग अन्तरालों पर करना पड़ता है। तो फिर प्रश्न यह उठता है कि समूची निवेशित पूँजी के कुल टर्नओवर और उसकी अवधि का आकलन कैसे किया जाये?

निवेशित पूँजी का सकल या कुल टर्नओवर वस्तुतः इसके विभिन्न अंगों के टर्नओवर का औसत होता है। हमें हरेक संघटक अंग के पुनर्नवीकरण की अवधि का आकलन करना होता है, उन सबका औसत निकालना होता है और इस प्रकार हमें कुल निवेशित पूँजी का सकल टर्नओवर प्राप्त हो जाता है। लेकिन यहाँ भी एक समस्या सामने आती है। हम यहाँ निवेशित पूँजी के इन विभिन्न हिस्सों के भौतिक पुनर्नवीकरण, यानी उपयोग-मूल्य के रूप में उनके पुनर्नवीकरण, पर विचार करें या उनके मूल्य के संचरण पर? मतलब, अचल पूँजी के तमाम तत्त्वों के भौतिक पुनर्नवीकरण का समय काफ़ी लम्बे अन्तराल के बाद आता है। लेकिन इस दौर में उत्पादन में उनकी घिसाई-दर के अनुसार उनका मूल्य संचरित होता रहा है, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं। उसी प्रकार, अचल पूँजी के विभिन्न तत्त्वों का भौतिक पुनर्नवीकरण भी अलग-अलग तरीके से होता है। जैसे कि कुछ तत्त्वों को पूरा का पूरा नया खरीदा जाता है, जब वे पूरी तरह से इस्तेमाल हो जाते हैं। मसलन, मशीनें व विभिन्न श्रम के उपकरण। लेकिन कुछ चीज़ें नियमित मरम्मतों के दौरान अंशतः पुनर्नवीकृत होती रहती हैं, जैसे कि सड़कें, इमारतें, गोदाम, आदि। इसलिए भी जब हम पूँजी के सभी हिस्सों के औसत टर्नओवर का आकलन करते हैं, तो उनके भौतिक पुनर्नवीकरण या

उनके गुणात्मक पहलू पर ध्यान नहीं केन्द्रित कर सकते हैं, बल्कि उनके मूल्य संचरण के पहलू पर या उनके परिमाणात्मक पहलू पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। दूसरे शब्दों में, हम उनके पुनर्नवीकरण का मूल्यांकन करते हुए उनके उपयोग-मूल्य वाले पहलू पर नहीं बल्कि मूल्य वाले पहलू पर विचार करते हैं। अन्यथा, निवेशित पूँजी के सभी अलग-अलग हिस्सों के टर्नओवर के औसत का, या, कुल निवेशित पूँजी के सकल टर्नओवर का मूल्यांकन ही लगभग असम्भव हो जायेगा।

यही कारण है कि जब हम कुल निवेशित पूँजी के सकल टर्नओवर का आकलन करते हैं तो हम $M \dots M'$, यानी मुद्रा-पूँजी के सर्किट का विश्लेषण करते हैं, न कि $P \dots P'$, यानी उत्पादक-पूँजी के सर्किट का, क्योंकि उत्पादक-पूँजी के सर्किट में हम पूँजी को उसके उत्पादक रूप, यानी उत्पादन के ठोस तत्त्वों या कारकों के रूप में देखते हैं, जबकि मुद्रा-पूँजी के सर्किट में हम उत्पादन के तत्त्वों के सभी गुणात्मक गुणों से अमूर्तन करते हैं, यानी उन्हें नज़रन्दाज़ करते हैं और केवल उनके मूल्य के पहलू पर विचार करते हैं। मुद्रा-पूँजी के सर्किट में हम उत्पादन के सभी कारकों के खर्च होने को केवल उनके मूल्य-रूप पर अपचयित करते हैं। इसलिए कुल निवेशित पूँजी के सकल टर्नओवर का विश्लेषण करते हुए हम केवल मुद्रा-पूँजी के सर्किट का ही उपयोग करते हैं। मार्क्स लिखते हैं:

“उत्पादन में प्रवेश करने वाली चल पूँजी अपना पूरा मूल्य उत्पाद में स्थानान्तरित कर देती है इसलिए अगर उत्पादन की प्रक्रिया को अबाधित रूप से जारी रखना होता है तो उसे उत्पाद की बिक्री के ज़रिये ठोस तौर पर लगातार पुनर्स्थापित किया जाना होता है। उत्पादन की प्रक्रिया में प्रवेश करने वाली अचल पूँजी केवल अपने मूल्य का एक हिस्सा (घिसाई) उत्पाद में स्थानान्तरित करती है, और उत्पादन-प्रक्रिया में अपनी घिसाई के बावजूद काम करना जारी रखती है; इसलिए उसे छोटे या लम्बे

अन्तरालों के बाद बदलने की आवश्यकता होती है, किसी भी स्थिति में उसे चल पूँजी के तत्त्वों के जितना जल्दी बदलने की आवश्यकता नहीं होती। इनको बदलने की यह आवश्यकता, उनकी पुनरुत्पादन-अवधि, अचल पूँजी के विभिन्न संघटक तत्त्वों के लिए केवल परिमाणात्मक रूप से ही भिन्न नहीं होती। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, अचल पूँजी का एक हिस्सा, जो लम्बे समय तक स्थायित्व वाला होता है और कई सालों तक फ़िक्स्ड रहता है, उसे वार्षिक या उससे कम अन्तरालों पर बदला जा सकता है, और पुरानी अचल पूँजी में ही उसे वस्तु-रूप में जोड़ा जा सकता है; जबकि एक अलग प्रकार की अचल पूँजी के साथ यह होता है कि उसके जीवन के समापन पर एक बार में ही उसे पूरा का पूरा बदला जा सकता है।

“इसलिए यह अनिवार्य होता है कि अचल पूँजी के अलग-अलग टर्नओवरों को टर्नओवर के एक समान रूप पर अपचयित किया जाये, ताकि अपने टर्नओवर की अवधि के मामले में ये केवल परिमाणात्मक रूप में भिन्न हों।” (वही, पृ. 262, अनुवाद हमारा)

लेकिन ऐसा तभी सम्भव है जब औसत टर्नओवर का मूल्यांकन करते हुए पूँजी के तत्त्वों के उपयोग-मूल्य वाले गुणात्मक पहलू पर नहीं, बल्कि उनके मूल्य वाले परिमाणात्मक पहलू पर विचार किया जाये। इसके बाद मार्क्स बताते हैं कि निवेशित पूँजी के सकल टर्नओवर का आकलन कैसे किया जाता है। इसके लिए मार्क्स एक सरल उदाहरण का इस्तेमाल करते हैं। इस सरल उदाहरण से ही सकल टर्नओवर के आकलन की पद्धति स्पष्ट हो जाती है और उसे अधिक जटिल उदाहरणों पर भी लागू किया जा सकता है।

संघटक तत्त्व (i)	नवेशित पूँजी (c _i)	टर्नओवर की वार्षिक संख्या (n _i)	कुल टर्न ओवर (c _i n _i)
1	25,000	1/10	2,500
2	12,5000	1/2	6,250
3	12,5000	2	25,000
कुल	C=50,000	औसत टर्न ओवर = 0.625	cn=33.750

यहाँ i निवेशित पूँजी के विभिन्न संघटक तत्त्वों को प्रदर्शित करता है। कुल निवेशित पूँजी $C = 50,000$ है। इसके संघटक तत्त्व हैं c_1, c_2 और c_3 । स्पष्ट है कि $C = c_1 + c_2 + c_3$ है। यहाँ $c_1 = 25,000$ और एक वर्ष में इस संघटक तत्त्व के टर्नओवरों की संख्या (n_1) 1/10 है, यानी वह एक वर्ष में अपने मूल्य (25,000) का 1/10 हिस्सा उत्पाद के मूल्य में स्थानान्तरित करता है, यानी 2,500। दूसरे संघटक तत्त्व यानी $c_2 (=12,500)$ के साल भर में होने वाले कुल टर्नओवर की संख्या (n_2) है 1/2, यानी वह साल भर में अपने मूल्य का आधा हिस्सा यानी 6,250 उत्पाद के मूल्य में स्थानान्तरित करता है। उसी प्रकार निवेशित पूँजी का तीसरा संघटक तत्त्व (c_3) है 12,500 जबकि साल भर में उसके टर्नओवरों की संख्या (n_3) है 2। यानी वह अपने पूरे मूल्य को दो दफ़ा उत्पाद के मूल्य में स्थानान्तरित करता है। यानी उसके द्वारा स्थानान्तरित मूल्य हुआ 25,000। इस प्रकार साल भर में निवेशित पूँजी के संघटक तत्त्वों द्वारा उत्पाद के मूल्य में जो कुल मूल्य स्थानान्तरित होता है वह है 33,750। इन आँकड़ों के आधार पर निवेशित पूँजी का औसत टर्नओवर निम्न प्रकार से आकलित किया जायेगा:

निवेशित पूँजी का औसत टर्नओवर (n) = सकल टर्नओवर (cn)/कुल निवेशित पूँजी (C) = $cn/C = 33,750/50,000 = 0.675$

अगर हम कुल निवेशित पूँजी का टर्नओवर पूर्ण होने की कुल अवधि की गणना करना चाहते हैं, तो चूँकि टर्नओवर की माप 1 वर्ष होती है इसलिए निवेशित पूँजी के औसत टर्नओवर द्वारा कुल निवेशित पूँजी के औसत टर्नओवर की अवधि की माप में भाग देंगे:

कुल निवेशित पूँजी के टर्नओवर का कुल समय = $1 \text{ वर्ष}/0.675 = 1/0.675 = 1.48$

यानी कुल निवेशित पूँजी का सकल टर्नओवर पूरा होने में 1.48 वर्ष का समय लगेगा। उपरोक्त पद्धति द्वारा हम किसी भी निवेशित पूँजी के सकल टर्नओवर और उसके पूर्ण होने में लगने वाले समय की गणना कर सकते हैं। जैसा कि हम इस

उदाहरण को देखकर समझ सकते हैं, कुल निवेशित पूँजी में से अचल पूँजी की टर्नओवर-अवधि कुल पूँजी के टर्नओवर-अवधि से ज़्यादा हो सकती है और आम तौर पर होती ही है। इसकी वजह यह होती है क्योंकि अचल पूँजी के एक टर्नओवर पूरा होने में चल पूँजी के कई टर्नओवर पूरे हो जाते हैं। अगर चल पूँजी के टर्नओवर की गति ज़्यादा हुई तो यह भी सम्भव है कि एक साल में टर्नओवर होने वाला, यानी मुद्रा-रूप में निवेशित होकर और फिर उत्पादित माल के बिकने पर मुद्रा-रूप में ही पूँजीपति के पास लौटने वाला कुल मूल्य कुल निवेशित पूँजी से ज़्यादा हो सकता है। दूसरे शब्दों में, कुल निवेशित पूँजी की टर्नओवर-अवधि एक वर्ष से कम हो सकती है। नतीजतन, अचल पूँजी के एक टर्नओवर में कई बार कुल निवेशित पूँजी के कई टर्नओवर शामिल होते हैं।

मार्क्स बताते हैं कि पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति के विकास के साथ अचल पूँजी के तत्त्वों यानी मशीनों, उपकरणों आदि का टिकाऊपन बढ़ता जाता है। ऐसे में उसका टर्नओवर और भी लम्बा हो सकता है। लेकिन इसके साथ ही पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति के विकास के साथ एक और परिघटना भी घटित होती है, जो विपरीत गति को प्रदर्शित करती है। वह यह कि पूँजी की आपसी प्रतिस्पर्धा और पूँजी और श्रम के बीच के अन्तरविरोध के कारण तकनोलॉजी और मशीनरी के उन्नत होने की प्रक्रिया भी त्वरित होती जाती है और इसलिए मशीनें व उपकरण अपने भौतिक रूप से घिस जाने के पहले ही “नैतिक रूप से” घिस जाते हैं। यानी, नयी मशीनें व तकनोलॉजी उत्पादन में आ जाती हैं और हर पूँजीपति अपनी पुरानी मशीनों के भौतिक रूप से पूर्णतः घिसने के पहले ही ये नयी अधिक उन्नत मशीनें खरीदने और उन्हें उत्पादन में लगाने को मजबूर हो जाता है। कारण यह कि उसके विभिन्न प्रतिस्पर्द्धी पूँजीपति नयी मशीनों और नयी तकनोलॉजी को लगाकर श्रम की उत्पादकता को बढ़ा देते हैं, अपनी प्रति इकाई लागत को घटा देते हैं और क्रीमतों को कम रखने की प्रतिस्पर्द्धा में उससे आगे निकल जाते हैं। परिणामतः हर पूँजीपति के लिए यह वांछनीय हो जाता है कि वह उन्नततम मशीनों और तकनोलॉजी का इस्तेमाल करे और इसके लिए कई बार उसे अपनी पुरानी मशीनों को पूर्ण रूप से उपयोग योग्य न (पेज 19 पर जारी)

पूँजी का टर्नओवर (जारी)

(पेज 18 से आगे)
रह जाने के, यानी भौतिक रूप से पूर्णतः खर्च हो जाने के पहले ही हटाना पड़ता है। यानी, मशीनों की भौतिक मृत्यु यानी उपयोग-मूल्य के तौर पर उनकी मृत्यु से पहले ही उनकी “आत्मिक/नैतिक” मृत्यु, यानी मूल्य के रूप में उनका समापन हो जाता है। मार्क्स लिखते हैं:

“पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति के विकास के साथ जिस सीमा तक उत्पादन में लगायी गयी अचल पूँजी का मूल्य और टिकाऊपन बढ़ते हैं, उसी हद तक हर विशिष्ट निवेश में उद्योग व औद्योगिक पूँजी का जीवन भी लम्बा होता जाता है, कई बार कई वर्षों तक, मान लें औसतन दस वर्षों तक। एक ओर अगर अचल पूँजी का विकास इस जीवन को लम्बा करता है, तो वहीं दूसरी ओर उत्पादन के साधनों के निरन्तर क्रान्तिकारी रूपान्तरण के कारण, जो स्वयं पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति के विकास के साथ बढ़ता है, यह जीवन छोटा भी हो जाता है। यह उत्पादन के साधनों में भी बदलाव लाता है; उनके भौतिक रूप से चुक जाने से काफ़ी पहले ही, उनका नैतिक अवमूल्यन हो जाता है और इसलिए उन्हें लगातार बदलते रहना अनिवार्य

हो जाता है।” (वही, पृ. 264, अनुवाद हमारा)

मार्क्स बताते हैं कि जब अचल पूँजी के विशाल तत्त्वों, जैसे कि इमारतों, भारी मशीनरों आदि को बदलने या पुनर्नवीकृत करने का समय आता है, मसलन 8-10 वर्षों में एक बार, तो उस समय पूँजीपति को उसके लिए भारी पूँजी निवेश करना पड़ता है। यह पूँजी या तो माल-उत्पाद के बार-बार बिकने के साथ अचल पूँजी के स्थानान्तरित मूल्य के वास्तवीकरण के ज़रिये उसके पास एकत्र होती जाती है जिसे एमॉर्टाइजेशन फ़ण्ड कहते हैं, या फिर अगर पूँजीपति एमॉर्टाइजेशन फ़ण्ड को किसी अन्य मद में खर्च कर देता है तो पूँजीवाद के उन्नत होने के साथ एक विकसित ऋण व्यवस्था के ज़रिये उधार के तौर पर उसे प्राप्त हो जाती है। इन दोनों में से किस रास्ते से उसे यह पूँजी प्राप्त होती है, इससे मसले की मूलभूत अन्तर्वस्तु व चरित्र पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता है, क्योंकि अन्ततः ऋण भी पूँजीपति अपने द्वारा विनियोजित बेशी मूल्य के एक हिस्से से ही चुकाता है और इससे केवल बेशी मूल्य के पूँजीपति वर्ग के विभिन्न हिस्सों में वितरण पर फ़र्क पड़ता है। बहरहाल, कुल सामाजिक पूँजी (यानी पूँजीवादी समाज में पूँजीपति वर्ग द्वारा निवेशित कुल पूँजी) के लिए ऐसी

अवधियों की एक औसत के रूप में गणना की जा सकती है और सभी अर्थशास्त्री ऐसा करते हैं, जिन अवधियों के बाद आम तौर पर अचल पूँजी के तत्त्वों का पुनर्नवीकरण होता है। इन औसत अवधियों के पूर्ण होने पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने पर अचल पूँजी के तत्त्वों की बदली होती है, बड़े पैमाने पर पूँजी निवेशित होती है और ये दौर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में एक अस्थायी उथल-पुथल लाते हैं क्योंकि इस दौरान भारी मात्रा में मुद्रा-पूँजी की आवश्यकता होती है। इसलिए कुल सामाजिक पूँजी के स्तर पर अचल पूँजी के औसत टर्नओवर के ये चक्र पूँजीवादी व्यवस्था के लिए एक नये चक्र की शुरुआत करते हैं। इन चक्रों को अर्थशास्त्र की भाषा में व्यवसाय-चक्र (business cycle) कहा जाता है।

यहाँ एक और बेहद अहम पहलू पर बात करना आवश्यक है। इन चक्रों को निर्धारित करने में पूँजीवादी व्यवस्था के मुनाफ़े की औसत दर की भी आधारभूत भूमिका होती है। जब मुनाफ़े की औसत दर ज़्यादा होती है और पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का वेग भी आम तौर पर ज़्यादा होता है और नतीजतन उत्पादन के दौरान अचल पूँजी के तत्त्वों की घिसाई दर भी ज़्यादा होती है, तो वे जल्दी खर्च हो

सकते हैं। साथ ही, इस दौर में मशीनों का नैतिक अवमूल्यन भी अधिक तेज़ रफ़्तार से होता है क्योंकि नयी तकनोलॉजी और मशीनों के आने की गति भी अपेक्षाकृत तेज़ होती है। वहीं मन्दी के दौर में उनके खर्च होने की दर आम तौर पर अपेक्षाकृत कम हो सकती है, हालाँकि बेकार खड़ी मशीनों का भी प्राकृतिक शक्तियों के कारण अवमूल्यन होता रहता है और अगर संकट दीर्घकालिक होता है तो संकट के अन्त तक अधिकांश मशीनें, यन्त्र, उपकरण आदि बेकार हो चुके होते हैं।

इसके निहितार्थ स्पष्ट हैं। मशीनों के खर्च होने की गति महज़ कोई भौतिक प्रक्रिया नहीं है जो केवल मशीनों के भौतिक टिकाऊपन से निर्धारित होती है। यानी, मशीनों के पूर्ण अवमूल्यन का रिश्ता केवल भौतिक तौर पर उनके जीवन-काल से नहीं होता। वास्तव में यह भौतिक जीवन-काल स्वयं पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की औसत दर से निर्धारित होता है। तथाकथित मार्क्सवादी डेविड हार्वी को लगता है कि अचल पूँजी का अवमूल्यन और उनका पुनर्नवीकरण मुनाफ़े की औसत दर से स्वतन्त्र कोई कारक है जो पूर्णतः अचल पूँजी के तत्त्वों की भौतिक प्रकृति से निर्धारित होते हैं, और यही व्यवसाय-चक्र को

निर्धारित करता है। लेकिन वास्तव में अचल पूँजी के अवमूल्यन की गति स्वयं पूँजीवादी उत्पादन की गति से निर्धारित होती है। मन्दी के दौर में यह अपेक्षाकृत कम गति से होता है, जबकि तेज़ी के दौर में यह अपेक्षाकृत अधिक गति से होता है। समूची अर्थव्यवस्था में अचल पूँजी के अवमूल्यन की औसत दर का कारणात्मक रिश्ता मुनाफ़े की औसत दर से होता है।

जब समूची अर्थव्यवस्था में अचल पूँजी के तत्त्वों, यानी मशीनों, उपकरणों आदि के पुनर्नवीकरण के दौर आते हैं, तो उस समय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने पर अचल पूँजी का निवेश होता है। दूसरी ओर, मन्दी या संकट के दौरों के बाद भी अक्सर अचल पूँजी के तत्त्वों के पुनर्नवीकरण के दौर आते हैं। ये दोनों ही कारक पूँजीवादी व्यवस्था में व्यवसाय-चक्रों को निर्धारित करते हैं। जैसा कि हम देख सकते हैं, दोनों ही स्थितियों में इन चक्रों को निर्धारित करने वाला बुनियादी तत्त्व मुनाफ़े की औसत दर है।

इसके बाद मार्क्स उन तीन कारकों पर आते हैं जो पूँजी के टर्नओवर और उसकी गति को प्रभावित करते हैं। ये कारक हैं कार्य-अवधि, उत्पादन-अवधि और संचरण-अवधि।

(अगले अंक में जारी)

क्रज़ माफ़ी के साथ पूँजीपति हुए मालामाल!

● बिगुल संवाददाता
पुणे स्थित आरटीआई कार्यकर्ता विवेक वेलंकर द्वारा दायर आरटीआई आवेदन के जवाब में एक गम्भीर मामला सामने आया है। सरकारी बैंक, बैंक ऑफ़ बड़ौदा (बीओबी) ने वित्त वर्ष 2020-21 से वित्त वर्ष 2025-26 तक छह वित्तीय वर्षों में 100 करोड़ रुपये और उससे अधिक के बकाया ऋण वाले उधारकर्ताओं के 35,715 करोड़ रुपये के ऋण को बट्टे खाते में डाल दिया है, जबकि इन खातों से 28% से कम की यानी 9,946 करोड़ की ही वसूली की गयी।

वित्त वर्ष 2020-21 और वित्त वर्ष 2021-22 में सबसे बड़ा ‘राइट-ऑफ़’ दर्ज किया गया, जब क्रमशः 11,916 करोड़ रुपये और 11,261 करोड़ रुपये तकनीकी रूप से बट्टे खाते में डाले गये। साथ ही चौकाने वाली बात यह है कि बैंक ऑफ़ बड़ौदा ने आरटीआई अधिनियम के तहत छूट का हवाला देते हुए उन बड़े उधारकर्ताओं के नामों का खुलासा करने से इंकार कर दिया, जिनके ऋण तकनीकी रूप से माफ़ कर दिये गये थे। बैंक ऑफ़ बड़ौदा ने अनुरोध को यह कहते हुए अस्वीकार

कर दिया कि यह जानकारी व्यक्तिगत प्रकृति की है तथा तीसरे पक्ष की जानकारी से सम्बन्धित है तथा इसके प्रकटीकरण से गोपनीयता का अनुचित उल्लंघन होगा। इसमें आरटीआई अधिनियम, 2005 की धारा 8 (1) (जे) का हवाला दिया गया।

यह रकम कितनी बड़ी है इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अगर ये सारे क्रज़दार अपना क्रज़ा लौटा देते तो शिक्षा-स्वास्थ्य पर खर्च राशि का बड़ा हिस्सा इसी से निकल आता। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं। पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाली मीडिया में इस व्यवस्था के पैरोकारों द्वारा हल्ला मचा-मचाकर लोगों को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया जाता है कि अर्थव्यवस्था में घाटे के लिए खुद आम लोग ज़िम्मेदार हैं क्योंकि वे अपने पूरे टैक्स नहीं चुकाते, बिल नहीं भरते, या शिक्षा, अस्पताल, खेती आदि में सरकारी सब्सिडी बहुत अधिक है, आदि-आदि।

देश की ग़रीब जनता कुल टैक्सों का तीन-चौथाई से भी ज़्यादा परोक्ष करों के रूप में देती है। मगर इसका भारी

हिस्सा नेताशाही और अफ़सरशाही की ऐय्याशियों पर और धन्नासेठों को तमाम तरह की छूटें और रियायतें देने पर खर्च हो जाता है। इतने से भी उनका पेट नहीं भरता तो वे बैंकों से भारी क्रज़ें लेकर उसे डकार जाते हैं! ग़रीबों के क्रज़ें वसूल करने के लिए उनकी झोपड़ी तक नीलाम करवा देने वाली सरकार अपने इन माई-बापों से एक पैसा नहीं वसूल पाती और फिर कई साल बाद उन्हें माफ़ कर दिया जाता है। दरअसल इस सारी रकम पर जनता का हक़ होता है। करोड़ों लोगों की छोटी-छोटी बचतों से बैंकों को जो भारी कमाई होती है, उसी में से वे पूँजीपति वर्ग के लिए यह दरियादिली दिखाते हैं!

एक तरफ़ मोदी सरकार दिनदहाड़े हमसे लूटकर अपने आक्राओं पर खुलेआम माल लुटा रही है; दूसरी तरफ़ हमारी आय भारतीय रुपये की तरह लगातार गिरती जा रही है। आम आबादी की लगातार घटती हुई कमाई का आलम अब यह है कि सबसे ग़रीब 20 प्रतिशत भारतीय परिवारों की सालाना आय पाँच साल में 52 प्रतिशत तक घट गयी है। पिछले दशक

में बेरोज़गारी अपने चरम पर है। एक रिपोर्ट के अनुसार अगर आप रु. 25,000 कमाते हैं तो आप भारत के ऊपरी 10 प्रतिशत आबादी में आते हैं! मज़दूरों का 57 प्रतिशत भारत में रु. 10,000 से कम कमाता है और समस्त उजरती श्रमिकों की बात करें तो उनकी औसत आय रु.16,000 है। निश्चित तौर पर, इसमें सबसे कम कमाने वाले मज़दूर वे हैं जो कि अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं और कुल मज़दूर आबादी का करीब 93 प्रतिशत बनते हैं।

मोदी सरकार के राज में बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से पूँजीपतियों के क्रज़ क्यों माफ़ हो रहे हैं? दरअसल, इस पूँजीवादी व्यवस्था का आर्थिक संकट गहराता जा रहा है। पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर में गिरावट हो रही है। इस संकट के दौर में भी पूँजीपतियों के मुनाफ़ा की दर को बनाये रखा जा सके, इसके लिए सरकार संकट का बोझ आम मेहनतकश जनता पर डाल रही है। एक तरफ़ हमारी मज़दूरी गत में धँसती जा रही है और महँगाई आसमान छू रही है और दूसरी तरफ़ पूँजीपतियों के क्रज़ों को माफ़ किया जा रहा है।

यह संकट पूँजीपतियों के मुनाफ़े की अन्धी हवस से पैदा होता है लेकिन इसका बोझ मेहनतकश आबादी उठाती है।

अगर हम ये हालात बदलना चाहते हैं, तो इसके लिए हमें लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी। साथ ही तात्कालिक मुद्दे जैसे प्रगतिशील कराधान प्रणाली लागू करके धनिक वर्गों पर टैक्स लगाकर महँगाई को कम करने, सार्वभौमिक राशन वितरण प्रणाली लागू करने, रोज़गार अधिकार की गारण्टी हासिल करने जैसे मुद्दों पर इस सरकार को घेरना होगा।

स्पष्ट है कि आमूलगामी क्रान्तिकारी परिवर्तन तभी आ सकता है जब तक कि इस पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़कर फेंका नहीं जाता क्योंकि इस व्यवस्था में सभी सरकारों, और विशेष तौर पर मौजूदा फ़ासीवादी मोदी सरकार, पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा करने के लिए ही बैठी हैं और यही इनका सर्वोपरि कार्यभार है। पूँजीपतियों की क्रज़ माफ़ी, सार्वजनिक उद्यमों का बेचा जाना, श्रम क़ानूनों की व्यवस्था को ख़त्म करना आदि इसी कार्यभार के निर्वाह में उठाये गये क़दम हैं।

योगी राज का असली खेल: अपराधियों को बेल, बेगुनाहों को जेल!

● नीशू

हाल ही में उत्तर प्रदेश की योगी सरकार ने 2013 के मुजफ्फरनगर दंगों के आरोपियों के खिलाफ चल रहे केस वापस ले लिये जिसके तहत नफ़रती भाषण व नफ़रती अपराधों के आरोपी 25 भाजपा नेताओं समेत कई कट्टर हिन्दुत्ववादी नेताओं को अपराध मुक्त कर दिया गया। ज़िले की विशेष सांसद-विधायक अदालत ने उत्तर प्रदेश के मौजूदा मंत्री कपिल देव अग्रवाल, पूर्व केन्द्रीय मंत्री संजीव बलियान और राज्य के पूर्व मंत्री सुरेश राणा, अशोक कंसल, सोहनवीर सिंह, विश्व हिन्दू परिषद की नेता साध्वी प्राची तथा महन्त यति नरसिंहानन्द जैसे साम्प्रदायिक दंगाइयों के खिलाफ़ मुक़दमे वापस लेने की मंजूरी दे दी। भाजपा के इन नेताओं के खिलाफ़ महापंचायत में भाषणों के ज़रिये साम्प्रदायिक तनाव भड़काने का आरोप था। मालूम हो कि सितम्बर 2013 में मुजफ़्फ़रनगर में हुए दंगों और इसके बाद आसपास के जिलों में हुई हिंसा में 62 से अधिक लोगों की नृशंस हत्या कर दी गयी थी और 50 हजार से ज्यादा लोगों को घर छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा था।

उत्तर प्रदेश की फ़ासीवादी भाजपा सरकार साम्प्रदायिक गुण्डों व अपराधियों को अपने शरण में लेकर उन पर दर्ज अपराधिक मुक़दमों को ख़त्म कर गुण्डा राज 'ख़त्म' करने का झूठा प्रचार कर रही है। आँकड़ों को गायब कर "उत्तम प्रदेश" की फ़र्जी छवि गढ़ने की कोशिश कर रही है। पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय में राजनीति के अपराधीकरण की एक रिपोर्ट पेश की गयी। 'एसोसिएशन फ़ॉर डेमोक्रेटिक रिफ़ॉर्म' की रिपोर्ट के मुताबिक, लोकसभा के 543 में से 251 और राज्यसभा के 233 में से 75 सदस्यों के खिलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज हैं।

तेलंगाना के मुख्यमंत्री रेवन्त रेड्डी पर 89 केस हैं। इसके बाद पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री सुवेन्दु अधिकारी पर 29 और कर्नाटक के मुख्यमंत्री डीके शिवकुमार पर 19 मामले दर्ज हैं। मज़ेदार बात यह है कि उत्तर प्रदेश का कोई आँकड़ा नहीं मिला क्योंकि उत्तर प्रदेश को "अपराध मुक्त" कर दिया है! इसकी घोषणा योगी सरकार ने कुर्सी सम्भालते ही कर दी थी!

योगी आदित्यनाथ ने साल 2017 में राज्य विधानसभा में घोषणा की कि राज्य सरकार जल्द ही "विभिन्न दलों के राजनेताओं और राजनीतिक कार्यकर्ताओं" के खिलाफ़ दर्ज लगभग 20,000 आपराधिक मामले वापस ले लेगी। इसके लिए यूपी सरकार ने 'उत्तर प्रदेश दण्ड विधि (अपराधों का शमन

एवं मुक़दमों का समापन) (संशोधन) विधेयक, 2017' पेश किया जोकि बिना किसी विरोध के पारित हो गया। लेकिन वास्तव में यह विभिन्न राजनेताओं और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बजाय मुख्यतः भाजपा से जुड़े नेताओं और साम्प्रदायिक हिन्दुत्ववादी गुण्डों को योगी आदित्यनाथ द्वारा दिया गया आश्वासन था कि "टेंशन नहीं लेने का- मैं हूँ न!"

'द वायर' में छपी एक ख़बर के मुताबिक़ घोषणा के बाद बाक्रायदा अभियान चलाकर नफ़रती भाषण व नफ़रती अपराधों के सभी आरोपियों को बरी करवाने का सिलसिला चला और इस अभियान की शुरुआत मुख्यमंत्री ने खुद अपनेआप से ही की और प्रदेश की "योगी सरकार ने योगी आदित्यनाथ को दोषमुक्त करार देकर बख़्शा दिया"। 'उत्तर प्रदेश दण्ड विधि (अपराधों का शमन एवं मुक़दमों का समापन) (संशोधन) विधेयक, 2017' पेश करने से ठीक एक दिन पहले योगी आदित्यनाथ ने 2007 में गोरखपुर में दिये गये अपने भड़काऊ भाषण से जुड़े अपराधिक मामले को वापस ले लिया।

इसके बाद तो प्रदेश उपमुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्य से लेकर आगरा के भाजपा सांसद राम शंकर कठेरिया के खिलाफ़ 12 मामले वापस लिये गये। मुजफ़्फ़रनगर दंगों के आरोपियों के ख़िलाफ़

दायर 131 मामले वापस ले लिये गये। 20,000 आपराधिक मामले वापस लेने का यह तर्क दिया गया कि इस क़दम का उद्देश्य लम्बित मामलों की संख्या को कम करना है!

वहीं दूसरी तरफ़ उत्तर प्रदेश की जेलों में विचाराधीन कैदियों की संख्या देश में सबसे ज्यादा है। यहाँ 55,000 कैदी हैं, जो कुल विचाराधीन कैदियों का लगभग एक-चौथाई हिस्सा है। जेल की वास्तविक क्षमता से कई गुना ज्यादा संख्या में कैदियों को अमानवीय परिस्थितियों में ठूँसा गया है। बहुत से कैदी तो छोटे-मोटे जुर्म में सालों से जेलों में बन्द हैं।

'नेशनल ज्यूडिशियल डेटा ग्रिड' के मुताबिक, उत्तर प्रदेश में 13% मामले 10 साल से ज्यादा समय से और 24%

मामले 5 से 10 साल के बीच से अटके हुए हैं।

भारतीय न्यायपालिका व कार्यपालिका का किस हद तक फ़ासीवादीकरण हो चुका है यह आज देश की आम मेहनतकश जनता के सामने है। भारतीय फ़ासीवादी कितना भी "हिन्दू हृदय सम्राट", "विकास", "अच्छे दिन" का ढोल बजा लें, इनकी असलियत परत दर परत हर बीतते दिन के साथ खुलती जा रही है। अपने पूँजीपति आकाओं के मुनाफ़े के रास्ते में आने वाले हर प्रकार के गतिरोध (पढ़ें, जनता का प्रतिरोध) को निर्ममतापूर्वक हटाने का काम इसलिए ही तो इतनी मुस्तैदी से भाजपा सरकार कर रही है। एक तरफ़ तो मुजफ़्फ़रनगर के दंगाइयों व अपराधियों के खिलाफ़ चल रहे मुक़दमे वापस लिये जा रहे हैं, उन्हें बरी किया जा रहा है, बलात्कारियों का फूल-मालाओं से स्वागत किया जा रहा है, स्वतन्त्र भारद्वाज जैसे नफ़रती गुबैरों को भाजपा के बड़े नेताओं द्वारा संरक्षण दिया जा रहा है; वहीं दूसरी तरफ़ इंसाफ़पसन्द नागरिकों, छात्रों और मजदूरों को जेलों में डाला जा रहा है, उनपर नक़ली, फ़र्जी मुक़दमे

फ़ासीवाद किसी एक धर्म या समुदाय के "हितैषी" होने का दावा करता है लेकिन वह चाकरी हमेशा पूँजी की ही करता है। दरअसल उत्तर प्रदेश के मजदूर आन्दोलन का बर्बर दमन करके योगी आदित्यनाथ ने यही किया। फ़ैक्टरी मालिकों की जमात में मजदूर आन्दोलन से मची खलबली को शान्त करने की मंशा से ही योगी आदित्यनाथ सरकार ने पूँजीपति वर्ग के प्रति अपनी पक्षधरता और वफ़ादारी का रिपोर्ट कार्ड पेश किया ताकि आगामी विधानसभा चुनावों में भरपूर चन्दा हासिल किया जा सके।

बहरहाल, मुजफ़्फ़रनगर की विशेष अदालत ने यह कहते हुए मामला वापस लेने की मंजूरी दे दी कि इससे अभियुक्त को "अधिक समर्पण के साथ जनता और समाज की सेवा करने" का अवसर मिलेगा, वर्तमान में परिस्थितियाँ "बदल गयी" हैं और आज समाज में कोई "साम्प्रदायिक अस्थिरता नहीं" है! लेकिन भाजपा की असलियत आखिर हम मजदूरों-मेहनतकशों से बेहतर कौन जानता है? मेहनतकश आबादी को लूटो-खसोटो और पूँजीपतियों को आबाद करो- यही

भाजपा की नीति है। देश भर में म हैं ग आई, बे रोज गारी, भ्रष्टाचार सातवें आसमान पर है। छात्र-नौजवान डिग्रियाँ लेकर भटक रहे हैं लेकिन वैकेंसी नहीं निकाली जा रही। तमाम सरकारी विभागों में ठेके-संविदा पर मजदूर खट रहे हैं। लेकिन भाजपा नेताओं की "मुसलमानों को सबक सिखाने" की साम्प्रदायिक

बयानबाज़ी जारी है। अभी हाल ही में मुजफ़्फ़रनगर दंगों से सम्बन्धित होर्डिंग

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बस अड्डे पर लगी पायी गयी जिस पर 'न भूले हैं न भूलेंगे' जैसे चुनौतीपूर्ण नारे लिखे थे।

उत्तर प्रदेश में भाजपा के दस साल मजदूरों, ग़रीब किसानों, छात्रों-नौजवानों, मुसलमानों, दलितों व स्त्रियों के लिये सबसे घातक सिद्ध हुए हैं। दलितों-अल्पसंख्यकों पर हमलों का ग्राफ़ बढ़ता जा रहा है। एक बात तो भाजपा को भी पता है कि 2027 का चुनाव जीतना आसान नहीं है इसलिए एसआईआर के ज़रिये वोटर लिस्ट से नाम हटवाने, 50,000 रुपये का लालच देकर महिलाओं का वोट ख़रीदने से लेकर नफ़रती भाषणों के ज़रिये जनता को आपस में लड़वाने तक की सारी कोशिशें जारी हैं। जन सरोकार से गह्वारी कर चुकी बिकाऊ मीडिया मन्दिर-मस्जिद की बहसें शुरू कर चुकी है। दावा किया जा रहा है कि जो राम को लाये हैं वही कृष्ण को लायेंगे! लेकिन मेहनतकश साथियों को यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि हमारी आस्था का इस्तेमाल करके यही भाजपाई मन्दिर का चन्दा तक चुराकर खा जाते हैं।

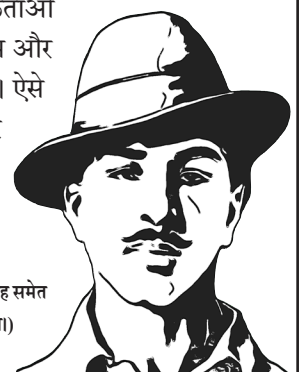
मन्दिर-मस्जिद, हिन्दू-मुस्लिम में बाँटकर हमें हमारी ज़िन्दगी के वास्तविक मुद्दों से भटका देते हैं, वे मुद्दे जिनसे हर रोज़ हमारा और हमारे परिवार का सामना होता है, चाहे वह दवा-इलाज का मसला हो, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई हो या फिर बढ़ती महँगाई हो। और जब हम अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाते हैं तो जेलों में ठूँस दिया जाता है। लेकिन यह केवल तभी तक होता है जब तक हम एकजुट नहीं हैं।

इतिहास का एक सबक यह भी है कि जिन भी देशों में मजदूरों ने एकजुट होकर अपने असली मुद्दों को लेकर संघर्ष किया है वहाँ न सिर्फ़ जीत हासिल की है बल्कि ऐसी तमाम साम्प्रदायिक फ़िरकापरस्त ताक़तों को इतिहास की कचरा पेटी में पहुँचाने का काम भी किया है।

क्रानून की पवित्रता तभी तक रखी जा सकती है जब तक वह जनता के दिल यानी भावनाओं को प्रकट करता है। जब यह शोषणकारी समूह के हाथों में एक पुर्जा बन जाता है तब अपनी पवित्रता और महत्त्व खो बैठता है। न्याय प्रदान करने के लिए मूल बात यह है कि हर तरह के लाभ या हित का खात्मा होना चाहिए। ज्यों ही क्रानून सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना बन्द कर देता है त्यों ही जुल्म और अन्याय को बढ़ाने का हथियार बन जाता है। ऐसे क्रानूनों को जारी रखना सामूहिक हितों पर विशेष हितों की दम्भपूर्ण ज़बरदस्ती के सिवाय कुछ नहीं है।

— शहीद भगतसिंह

(लाहौर षडयंत्र केस के विशेष ट्रिब्यूनल को दिया गया भगतसिंह समेत छह क्रान्तिकारियों का बयान। इसे भगतसिंह ने तैयार किया था।)



थोपे जा रहे हैं, उनकी रिहाई को ही असम्भव बनाया जा रहा है।

आज देश का लगभग हर मजदूर जानता है कि जब बेहिसाब बढ़ती महँगाई के खिलाफ़ अप्रैल में नोएडा के मजदूरों ने वेतन बढ़ोत्तरी की बेहद बुनियादी और जायज़ माँग को लेकर आन्दोलन किया तो योगी सरकार ने बर्बर दमन करते हुए हजारों बेगुनाह मजदूरों और उनके न्यायपूर्ण संघर्ष का समर्थन करने वाले इंसाफ़पसन्द छात्रों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों को जेल में डाल दिया। यहाँ तक कि उन पर राष्ट्रीय सुरक्षा क्रानून (रासुका) जैसा काला क्रानून थोप दिया। मजदूरों के आन्दोलन को बदनाम करने के लिए 'पाकिस्तान का कनेक्शन' जोड़ दिया गया।